❀ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ❀

श्रीश्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका व प्रार्थना

रचयिता
श्रील नरोत्तमदास ठाकुर महाशय

श्रीसद्गुरु शतक

श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज विरचित

प्रकाशक

लक्ष्मीनारायणदास
श्रीविष्णुप्रियागौरांग आश्रम
वनखण्डी महादेव के निकट
श्रीराधाकुण्ड (मथुरा)
+91 9897457066

प्रचारक

श्रीगौरगोपालदास बाबा–7895028887
नरोत्तमदास–9953510358
राघवदास–8920797423, मदनमोहनदास–9760228678

प्रकाशन तिथि : अगस्त, वर्ष २०२५

NAVRANG OFFSET PRINTERS

A Complete Printing & Book Binding etc.
9975787982

TYPIST & GRAPHICS DESIGNER

Brijbhoosan Pathak 8881982106, 8630192318

॥ गौराङ्गविधुजर्यति ॥

श्रीश्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका व प्रार्थना

रचयिता

श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय

निवेदन

रसिक प्रेमिक महानुभावो! श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के वैष्णवाचार्यों ने हजारों भक्ति ग्रंथों की रचना की है। वे सभी अद्वितीय एवं रसप्रदायक हैं। इनमें भी श्रीचैतन्यभागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीवृहद्भागवतामृत, श्रीषट्सन्दर्भ, श्रीगौरगोविन्द-लीलामृत गुटिका व श्रीप्रेमभक्तिचन्द्रिका का पाठ प्रायः सर्व वैष्णवजन करते ही हैं। रागानुगाभक्ति के प्रमुख ग्रंथ हैं।

श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेव के प्रिय पार्षद श्रील लोकनाथ गोस्वामिपाद के शिष्य श्रीनरोत्तमदास ठाकुर ने 'श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका व प्रार्थना' ग्रंथ की रचना की है। इनमें श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका में श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्य का सार सिद्धान्त वर्णन कर दिया है। 'प्रार्थना' में तो श्रीनिताई-गौर व श्रीश्रीराधाकृष्ण के श्रीचरणों में आर्तिमयी सेवा अभिलाषा प्रार्थना की है। जिसे पढ़कर-सुनकर तो पाषाण हृदय मनुष्य का भी हृदय विगलित हो जायेगा। अधिकांश हिन्दी भाषीजन इनका प्रतिदिन भावपूर्वक पाठ करें तो हमारा श्रम व उद्देश्य सफल हो जायेगा। आप सभी से भी निवेदन है इस ग्रंथ का प्रकाशन करके रागानुगा भक्ति का प्रचार-प्रसार कीजिये।

जय गौर!

श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय विरचित
श्रीप्रेमभक्ति-चन्द्रिका

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१।।

जिन्होंने ज्ञानरूपी अञ्जन शलाका के द्वारा मेरे अज्ञान से अन्ध नेत्रों को खोल दिया है। अर्थात् श्रीराधाकृष्ण के दिव्य प्रेम को जानने-देखने की दिव्य दृष्टि प्रदान की है, मैं ऐसे श्रीलगुरुदेव की शत शत वन्दना करता हूँ।।१।।

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
सोऽयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्।।२।।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के मनोभीष्ट को जिन्होंने इस पृथ्वी पर स्थापित किया, वे श्रील रूपगोस्वामिपाद कब मुझे अपने श्रीचरणकमलों के निकट निवास का सौभाग्य प्रदान करेंगे?।।२।।

श्रीगुरु-चरण पद्म, केवल भक्तिसद्म,
वन्दों मुञि सावधान सने।
जाँहार प्रसादे भाई, ए भव तोरिया जाई,
कृष्णप्राप्ति हय जाहा हने।।३।।

श्रील गुरुदेव के चरणकमल ही एकमात्र भक्ति के गृह या भण्डार हैं इसलिये मैं सावधान होकर उनकी वन्दना करता हूँ। श्रीगुरुचरणों की कृपा से इस भवसागर से पार हो सकता हूँ और श्रीकृष्ण-प्राप्ति हो सकती है।।३।।

गुरु मुख पद्म वाक्य, हृदि करि महाशक्य,
आर ना करिह मने आशा।
श्रीगुरुचरणे रति, एइ से उत्तम-गति,
जे प्रसादे पुरे सर्व आशा।४।।

हे भाई! श्रीगुरु-मुखारविन्द के वचनों को महा शक्तिमान् जानिए इसलिये मन में किसी और का विश्वास मत कीजिये। श्रीगुरु-चरणों में रति होना ही परम गति है। उनकी कृपा से समस्त मनो-कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।।४।।

चक्षुदान दिला जेई, जन्मे जन्मे प्रभु सेई,
दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेमभक्ति जाहा हैते, अविद्या विनाश जाते,
वेदे गाय जाँहार चरित।।५।।

मनुष्य को जो चक्षुदान करते हैं, जो श्रीकृष्णमंत्र दीक्षा एवं शिक्षा प्रदान कर श्रीकृष्णतत्त्वरूपी दिव्य-ज्ञान को प्रदान करते हैं, श्रीगुरु ही मेरे जन्म-जन्म के प्रभु गुरु हैं, प्रेमभक्ति जिन से प्राप्त होती है, तथा अविद्या अर्थात् (देह-गेह आदि अहंता-ममता) नष्ट होती है। इस लिए वेद-शास्त्र में उनकी महिमा का गान किया गया है।।५।।

श्रीगुरु करुणासिन्धु, अधम जनार बन्धु,
लोकनाथ लोकेर जीवन।
हा! हा! प्रभु कर दया, देह मोरे पदछाया,
एवे यशः घुषुक त्रिभुवन।।६।।

मेरे श्रीगुरुदेव श्रील लोकनाथ गोस्वामिपाद करुणा के सागर हैं, मुझ अधम के बन्धु हैं, केवल मेरे ही नहीं, वे सब लोगों के जीवन हैं। हा गुरुदेव! हे प्रभुपाद! आप मुझ पर दया कीजिये और मुझे अपनी श्रीचरण-छाया में निवास दीजिए। तीनों लोक आपके यश का गान करते रहें।।६।।

वैष्णव-चरणरेणु, भूषण करिया तनु,
जाहा हैते अनुभव हय।
मार्ज्जन हय भजन, साधुसंग अनुक्षण,
अज्ञान अविद्या पराजय।।७।।

वैष्णव चरण-रज को मैं अपने देह पर भूषण की तरह धारण करता हूँ, क्योंकि इससे श्रीकृष्णभक्ति की अनुभूति होती है। साधुसंग-भजन-साधन से चित्त मार्जित होता है, उसमें बाधा-विघ्न नहीं आते। ऐसे श्रीकृष्ण-भक्तों का निरन्तर संग करने से अज्ञान व अविद्या का नाश हो जाता है।।७।।

जय सनातन रूप, प्रेमभक्ति रस-कूप,
युगल-उज्ज्वलमय तनु।
जाँहार प्रसादे लोक, पाशरिल सब शोक,
प्रकटिल कल्पतरु जनु।।८।।

हे श्रीसनातन गोस्वामिपाद! आपकी जय हो। हे श्रीरूप गोस्वामिपाद!! आपकी जय हो। आप ही प्रेमभक्तिरस के सागर हैं, श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोर के उज्ज्वल रस से विभावित आपका देह है। आपकी कृपा से जीव-जगत् के समस्त दुःख-शोक दूर हो जाते हैं। आप तो श्रीकृष्णभक्ति रूप मनोकामना को प्रदान करने के लिये मानो कल्पवृक्ष के समान हैं।।८।।

प्रेमभक्ति-रीति जत, निज ग्रंथे सुवेकत,
लिखियाछेन दुई महाशय।
जाहार श्रवण हैते, परानन्द हय चित्ते,
युगल मधुर रसाश्रय।।९।।

प्रेमभक्ति जो साधन ग्रंथों में सुव्यक्त भाव से प्रकाशित है। उन ग्रंथ-वाक्यों को सुनने से ही चित्त में परमानन्द प्रकट हो उठता है। इन ग्रंथों में युगल-मधुर रस व्यक्त है।।९।।

युगल-किशोर प्रेम, लक्षवान जेन हेम,
हेन धन प्रकाशिल यारा।
जय रूप! सनातन! देओ मोरे प्रेमधन,
से रतन मोर गले हारा।।१०।।

इन सब ग्रंथों में श्रीयुगलकिशोर के मधुर-प्रेम को तप्त-सुवर्ण की भाँति अतिशय विशुद्ध-रूप में प्रकाशित किया है। हे श्रीरूप! हे श्रीसनातन! आपकी जय हो। वही विशुद्ध उज्ज्वल-रसमयी भक्ति-सम्पत्ति मुझे प्रदान कीजिए। उस रत्न को मैं अपने कण्ठ का हार करके धारण करूँ- ऐसी मेरी प्रार्थना है।।१०।।

भागवत शास्त्र-मर्म, नवविधा भक्ति-धर्म,
सदाई करिव सुसेवन।
अन्य देवाश्रय नाई, तोमारे कहिल भाई,
एइ भक्ति परम कारण।।११।।

श्रीठाकुर महाशय कहते हैं- श्रीमद्भागवत महापुराण तथा भक्ति प्रतिपादन करने वाले समस्त शास्त्रों का सार है- नवधा भक्ति का आचरण। मैं तो उसी धर्म का ही सदा सेवन करूँगा। हे भाई! मुझे और किसी देवी-देवता का आश्रय नहीं करना है, भक्ति का यही मूल कारण है।।११।।

साधु शास्त्र गुरु वाक्य, हृदये करिया ऐक्य,
सतत भासिव प्रेम माझे।
कर्मी ज्ञानी भक्तिहीन, इहाके करिवो भिन,
नरोत्तम एई तत्त्व गाजे।।१२।।

साधु, भक्तिशास्त्र एवं श्रीगुरुदेव के वाक्यों में एकता का अनुसंधान कर, वे श्रीकृष्णभक्ति के अनुकूल हैं- ऐसा हृदय में निश्चय कर मैं निरन्तर प्रेम में निमग्न होऊँगा। कर्म-मार्ग, ज्ञान-मार्ग, भक्ति-हीन हैं, उनसे तो मैं सदा दूर रहूँगा- इस सिद्धान्त की तो मैं सर्वत्र सदा गर्जना करूँगा।।१२।।

श्रीमद् रूपगोस्वामिपादेनोक्तम्-
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा।।

-श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु

अन्य कामनाओं से रहित, ज्ञान-कर्म तथा योग से अमिश्रित, अनुकूल-भाव से श्रीकृष्ण का जो अनुशीलन है मन, वचन तथा कर्म की समस्त चेष्टाओं को श्रीकृष्ण के निमित्त और उनके परिकर-धाम के निमित्त लगाना उसे 'उत्तमा-भक्ति' कहते हैं। इस श्लोक की व्याख्या आगे की त्रिपदी में करते हैं-

अन्य अभिलाषा छाड़ि, ज्ञान कर्म परिहरि,
काय-मने करिवो भजन।
साधु संगे कृष्ण-सेवा, ना पूजिव देवी-देवा,
एइ भक्ति परम कारण।।१३।।

श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से रहित जो कामनाएं है, उन सबका त्याग कर दीजिए। ज्ञान, कर्म एवं योग मार्ग को परित्याग कर देह से, मन से श्रीकृष्ण का भजन-स्मरण कीजिए अर्थात् देह से होने वाली समस्त चेष्टाऐं एकमात्र श्रीकृष्ण सम्बन्धी ही करनी चाहिये एवं मन से श्रीकृष्णनाम-रूप-गुण-लीला-धाम का स्मरण करना चाहिए। श्रीकृष्णभक्तों के साथ श्रीकृष्ण की सेवा करनी चाहिये। श्रीकृष्ण को छोड़कर अन्य किसी देवी-देवता की पूजा न कीजिए, ऐसा अनुशीलन ही उत्तमा-भक्ति प्राप्ति की मूल कारण है।।१३।।

महाजनेर जेइ पथ, ताते हव अनुरत,
पूर्वापर करिया विचार।
साधन-स्मरण लीला, इहाते ना कर हेला,
काय-मने करिया सुसार।।१४।।

भक्ति-पथ के आचार्यों ने जिस रीति-नीति का भजन आदर्श स्थापित किया है, साधक को उसी पथ का अनुगमन करना चाहिए। अतः अपने सजातीय-अर्थात् अपने भावानुरूप भजनशील महत् पुरुषों का ही अनुगमन करना चाहिये।

श्रवण-कीर्तन आदि तथा कृष्णलीला के स्मरण में कभी भी शिथिलता नहीं करनी चाहिए। देह से श्रीनाम-संकीर्त्तन, भगवत्-कथा श्रवण, लीला-स्थल दर्शन आदि भक्ति के अंगों का आचरण करना चाहिए तथा मन से श्रीकृष्ण की मानसी सेवा करना- रागानुगा मार्ग का विशिष्ट भजन है।।१४।।

असत-संग सदा त्याग, छाड़ अन्य गीत-राग,
कर्मी ज्ञानी परिहरि दूरे।
केवल भक्त संग, प्रेम भक्ति रस संग,
लीला कथा व्रजरसपुरे।।१५।।

असत् संग का सदा त्याग करो, भक्ति के विपरीत गीत-रागादि मनोरंजन कार्यों को मत करो। कर्मी, ज्ञानियों का संग दूर से त्याग कर दो। एकमात्र भक्तों के साथ श्रीकृष्ण की प्रेममयी कथाओं के रस में अपने को रंग दो। लीलाकथा भी विशेषतः वही जो ब्रजरस से पूर्ण हो।।१५।।

योगी न्यासी कर्मी ज्ञानी, अन्य देव पूजक ध्यानी,
इह लोक दूरे परिहरि।
धर्म कर्म दुःख शोक, जेवा थाके अन्य योग,
छाड़ि भज गिरिवर-धारी।।१६।।

योगी, संन्यासी, कर्मकाण्डी, ज्ञानी, अन्यान्य देवताओं को पूजने व ध्यान करने वाले, इन सब लोगों से दूर रहिये। धर्म, कर्म, दुःख-शोक तथा स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति की आसक्ति त्याग दीजिये, एकमात्र श्रीगिरिधारी का भजन-स्मरण कीजिये।।१६।।

तीर्थयात्रा परिश्रम, केवल मनेर भ्रम,
सर्वसिद्धि गोविन्द-चरण।
सुदृढ़ विश्वास करि, मद-मात्सर्य परिहरि,
सदा कर अनन्य-भजन।।१७।।

तीर्थयात्रा करने से पुण्य होता है और उससे मनोरथ सिद्ध होते हैं, किन्तु तीर्थयात्रा एकमात्र परिश्रम ही है। यह केवल मन का भ्रम है कि तीर्थयात्रा से पुण्य होता है, वास्तव में श्रीगोविन्द के श्रीचरणों की भक्ति ही सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाली है। अतः दृढ़ विश्वासपूर्वक श्रीगोविन्द का अनन्य भजन कर अज्ञानमय अहंकार तथा दूसरों के उत्कर्ष को सहन न करने की प्रवृत्ति का त्याग कर देना चाहिये।।१७।।

कृष्णभक्त अंग हेरि, कृष्णभक्त संग करि,
श्रद्धान्वित श्रवण-कीर्त्तन।
अर्च्चन स्मरण ध्यान, नवभक्ति महाज्ञान,
एई भक्ति परम कारण।।१८।।

श्रीकृष्ण के भक्तों का दर्शन करना, उनका ही सदा संग करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक श्रीकृष्णनाम-लीलागुणों को सुनें एवं कीर्त्तन करें। श्रीकृष्ण की पूजा, उनका किसी प्रकार से भी स्मरण तथा ध्यान करना ही वैष्णवों के लिये आचरणीय है। यही नवधा-भक्ति का महत् स्वरूप है। इसी नवधा भक्ति का आचरण ही प्रेम-भक्ति का प्रधान कारण है।।१८।।

हृषिके गोविन्द सेवा, ना पूजिवे देवी-देवा,
एइ त अनन्य-भक्ति कथा।
आर जत उपालम्भ, विशेष सकलि दम्भ,
देखिते लागये बड़ व्यथा।।१९।।

इन्द्रियों के स्वामी श्रीगोविन्द की सेवा करना, किसी भी देवी-देवता की पूजा न करना- यह 'अनन्य-भक्ति' कही गयी है और जितने भी कर्म, योग, ज्ञानादि के साधन हैं, एकमात्र कपट या आत्मवञ्चना ही है। उनके साधन और साध्यों को विचार करने से मन

को अति दुःख ही होता है; क्योंकि उनके आरम्भ में भी दुःख है और अन्त में भी दुःख। परमानन्द की प्राप्ति नहीं होती।।१६।।

देहे वैसे रिपुगण, जतेक इन्द्रियगण,
केह कारो बाध्य नहि हय।
शुनिले ना शुने काण, जानिले न जाने प्राण,
दढ़ाइते ना पारे निश्चय।।२०।।

देह में काम-क्रोध-लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य ये शत्रु वास करते हैं वाक्, पाणि, पाद, पयु एवं उपस्थ- ये पाँच कर्मेन्द्रिय तथा चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा एवं त्वक्- ये पाँच ज्ञानेन्द्रिय देह में वर्तमान हैं। किन्तु इन दोनों में कोई भी किसी के वशीभूत नहीं होना चाहता। एक दूसरे को अपनी-अपनी ओर खींचने में लगे रहते हैं। शास्त्र-गुरु के वचन कानों से सुनकर भी नहीं सुनते और मन सब असत्-सत् जानते हुए भी अज्ञान में भटकता रहा है। बुद्धि को श्रीकृष्णभक्ति में सुदृढ़ रूप से नियुक्त नहीं कर सकता।।२०।।

काम क्रोध लोभ मोह, मद मात्सर्य दम्भ सह,
स्थाने स्थाने नियुक्त करिव।
आनन्द करि उदय, निपु करि पराजय,
अनायासे गोविन्द भजिव।।२१।।

इसलिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य को स्थान-स्थान पर नियुक्त कर दूँगा। आनन्दपूर्वक इन शत्रुओं को पराजित कर मैं बिना किसी श्रम से श्रीगोविन्द का भजन करूँगा।।२१।।

कृष्णसेवा कामार्पणे, क्रोध भक्तद्वेषिजने,
लोभ साधुसंगे हरिकथा।
मोह इष्ट-लाभ विने, मद कृष्ण गुणगाने,
नियुक्त करिव जथा तथा।।२२।।

समस्त कामनाओं को श्रीकृष्ण-सेवा में लगा दुँगा, क्रोध को भक्तों से द्वेष करने वाले लोगों के प्रति प्रयोग करूँगा। साधु-संग तथा हरिकथा में लोभ को नियुक्त कर दुँगा। इष्ट-प्राप्ति के अभाव में अर्थात् भक्ति, भक्त एवं भगवान् की प्राप्ति के बिना चित्त में मोह को स्थान दूँगा तथा कृष्णनाम-गुण-गान में मद से काम लूँगा। अर्थात् श्रीकृष्ण नाम-गुण-गान में उन्मत्त हो उठुँगा- इस प्रकार इन छः शत्रुओं को इनके यथायुक्त स्थानों पर नियुक्त कर दुँगा। इससे कोई भी मेरे भजन में बाधा नहीं डाल सकेगा। समस्त इन्द्रियों द्वारा श्रीगोविन्द की ही सेवा करूँगा।।२२।।

अन्यथा स्वतंत्र काम, अनर्थादि जार धाम,
भक्तिपथे सदा देय भंग।
किवा से करिते पारे, काम क्रोध साधकेरे,
यदि हय साधुजनार संग।।२३।।

श्रीकृष्ण-सम्बन्धित यथोचित्त स्थानों पर इन छः शत्रुओं को नियुक्त न करने पर ये सब अनर्थों को जन्म देते हैं, भक्तिपथ याजन में सदा बाधा-विघ्न डालते हैं। साधक सदा भक्तों के साथ निवास करे, सेवा में लगा रहे तो काम-क्रोध आदि उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।।२३।।

क्रोध वा ना करे किवा, क्रोध त्याग सदा दिवा,
लोभ मोह एइते कथन।
छय रिपु सदा हीन, करिव मनेर अधिन,
कृष्णचन्द्र करिया स्मरण।।२४।।

क्रोध ऐसा बलवान है, वह क्या नहीं कर डालता? इसी प्रकार लोभ और मोह भी बड़े बलवान हैं, साधक को साधुसंग-हीन जानकर उसका बहुत अहित कर डालते हैं। इसलिये बुद्धि को इन छः शत्रुओं से सदा बचाना होगा। एकमात्र श्रीकृष्ण-स्मरण से मन इन शत्रुओं से

बच सकता है, और कोई भी उपाय नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्णस्मृति या उनकी शरण में रहने से जीव माया से सदा सुरक्षित रहता है।।२४।।

आपनि पालावे सब, शुनिया गोविन्द-रव,
सिंह-रवे जेन करिगण।
सकल विपत्ति जावे, महानन्द सुख पावे,
जार हय एकान्त भजन।।२५।।

सिंह की गर्जना को सुनकर जैसे हाथी भाग जाता है, उसी प्रकार श्रीगोविन्द का नाम सुनते ही काम-क्रोध आदि सब शत्रु स्वतः ही भाग जायेंगे। जिसका एकान्त-भजन होता है- उसकी समस्त विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं एवं वह परमानन्द को प्राप्त करता है।।२५।।

ना करिह असत् चेष्टा, लाभ पूजा प्रतिष्ठा,
सदा चिन्त गोविन्द-चरण।
सकल विपत्ति जावे, महानन्द सुख पावे,
प्रेम-भक्ति परम कारण।।२६।।

लाभ (धन-सम्पत्ति की प्राप्ति), पूजा एवं प्रतिष्ठा (यश) ये सब असत् वस्तुएँ हैं, उनके पाने की कभी चेष्टा न करो। सदा श्रीगोविन्द के चरणकमलों का चिन्तन करो। इससे समस्त विपत्तियाँ दूर होती हैं, और परम आनन्द की प्राप्ति होती है, यह प्रेम-भक्ति प्राप्ति के प्रधान कारण हैं।।२६।।

असत् क्रिया कुटि नाटी, छाड़ अन्य परिपाटी,
अन्य देवे न करह रति।
आपन-आपन स्थाने, पिरिति सभाय टाने,
भक्तिपथे पड़ये विगति।।२७।।

असत् कर्म, अधर्म और दूसरों की चर्चा का त्याग करो, कभी दूसरे देव में मन मत करो। यदि तुम उनमें प्रीति करोगे, तो वे तुम्हें अपनी-अपनी ओर खीचेंगे, इससे भजन में बाधा पड़ेगी।।२७।।

आपन भजन पथ, ताते हवे अनुरत,
इष्टदेव-स्थाने-लीला-गान।
नैष्ठिक भजन एइ, तोमारे कहिल भाई,
हनुमान ताहाते प्रमाण।।२८।।

इसलिए अपने ही भजन पथ (उपासना पद्धति) में अनुरक्त रहना चाहिये। अपने ही इष्टदेव की नाम-गुण-लीलाओं का गान करना उचित है। इसी का नाम नैष्ठिक- भजन है। हे भाई! यह मैंने बड़े रहस्य की बात तुम्हें बताई है, इसमें श्रीहनुमानजी प्रमाण हैं।।२८।।

श्रीनाथे जानकीनाथे चाभेदः परमात्मनि।
तथापि मम सर्वस्वः रामः कमललोचनः।।२९।।

श्रीलक्ष्मीनाथ श्रीनारायण और श्रीजानकीनाथ श्रीराम दोनों में कोई भेद नहीं है, दोनों भगवान् हैं, फिर भी मेरे तो सर्वस्व कमल-लोचन श्रीराम ही हैं।।२९।।

देवलोक, पितृलोक, पाय तारा महासुख,
साधु साधु बले अनुक्षण।
युगल-भजये जारा, प्रेमानन्दे भासे तारा,
ताहार निछनि त्रिभुवन।।३०।।

जो व्यक्ति श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकिशोर का भजन करते हैं, उनको देखकर देवलोक में देवतागण तथा पितृलोक में पितृगण परमसुख को प्राप्त करते हैं। वे 'बहुत अच्छा, अति सुन्दर'- कहकर उस मनुष्य की प्रशंसा करते हैं। युगल-भजनकारी सदा प्रेमानन्द में निमग्न रहता है, त्रिभुवन में उनकी बलिहारी देते हैं।।३०।।

पृथक आवास योग, दुःखमय विषय भोग,
ब्रजवास गोविन्द-सेवन।
कृष्णकथा कृष्णनाम, सत्य सत्य रसधाम,
ब्रजजनेर संग अनुक्षण।।३१।।

ब्रजमण्डल को छोड़कर जो अन्यत्र वास है, वह विषय भोग की तरह दुःखमय है। ब्रजवास तो श्रीगोविन्द-सेवन ही है, ब्रजवासियों के साथ श्रीकृष्णकथा एवं श्रीकृष्णनाम का स्मरण होता है, जो वास्तव में सच्चा रस-भण्डार है।।३१।।

सदा सेवा अभिलाष, मने करि विशोयास,
सर्वथाइ हइया निर्भय।
नरोत्तम दास बोले, पड़िनु असत भोले,
परित्राण कर महाशय।।३२।।

श्रीठाकुर महाशय कहते हैं- इसलिये मैं सदा श्रीगोविन्द-सेवन की अभिलाषा करता हूँ। सदा श्रीगोविन्द-कथा, श्रीगोविन्द-नाम तथा श्रीगोविन्द-भक्तों का संग चाहता हूँ- इसी में मेरा परम विश्वास है। अतः मैं सर्वथा निर्भय होकर इसी की प्रार्थना करता हूँ। हे कृष्ण! मैं तो असत्य संसार की गर्त में पड़ा हुआ हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए।।३२।।

तुमित दयार सिन्धु, अधम जनार-बन्धु,
मोरे प्रभो! कर अवधान।
पड़िनु असत-भोले, काम तिमिंगिले गिले,
ओहे नाथ! करि परित्राण।।३३।।

हे प्रभो! आप तो दयासिन्धु एवं दीनजन बन्धु हो, आप मेरी ओर ध्यान दीजिये। मैं माया के कवल में पड़ा हुआ हूँ एवं मुझे कामना रूपी मगरमच्छ निगले जा रहे है। हे नाथ! आप मेरी रक्षा कीजिये।।३३।।

यावत् जनम मोर, अपराधे हैनु भोर,
निष्कपटे ना भजिनु तोमा।
तथापि तुमि से गति, ना छाड़िह प्राणपति,
आमा सम नाहिक अधमा।।३४।।

जब से मेरा जन्म हुआ, अपराधों में सना हुआ हूँ। मुझसे आपका निष्कपट भजन नहीं हो सकता, तथापि मेरी गति एकमात्र आप हैं। हे प्राणपति! आप मेरा त्याग न कीजिये। मुझसे तो कोई अधम है ही नहीं।।३४।।

पतित-पावन नाम, घोषणा तोमार श्याम,
उपेखिले नाहि मोर गति।
यदि हइ अपराधी, तथापिह तुमि गति,
सत्य सत्य जेन सती-पति।।३५।।

हे श्यामसुन्दर! आपका पतित-पावन नाम त्रिभुवन में विख्यात है। इसलिये मुझ पतित की उपेक्षा करने से मेरी गति नहीं है। यद्यपि मैं अपराधी हूँ, फिर भी मेरी गति तो आप ही हैं, जैसे सती-स्त्री का पति ही एकमात्र गति होता है, वैसे आप ही एकमात्र मेरी गति हैं- यह सत्य कह रहा हूँ।।३५।।

तुमित परम देवा, नाहि मोरे उपेखिवा,
शुन शुन प्राणेर ईश्वर।
यदि करि अपराध, तथापिह तुमि नाथ,
सेवा दिया कर अनुचर।।३६।।

हे प्राणेश्वर! आप तो परमदेव हो स्वयं निरपेक्ष भगवान् हो, इसलिए मेरी उपेक्षा नहीं कीजिए। यदि अपराध करता हूँ, तो भी तो मेरे आप ही नाथ हैं। मुझे अपनी सेवा देकर दास रूप में ग्रहण कीजिए।।३६।।

कामे मोर हत चित, नाहि जाने निज हित,
मनेर ना घुचे दुर्वासना।
मोरे नाथ! अंगी कुरु, ओहे वाञ्छा-कल्पतरु,
करुणा देखुक सर्वजना।।३७।।

कामनाओं से मेरा चित्त विभ्रान्त हो रहा है, अपना हित नहीं जानता, दुर्वासनाएं नष्ट नहीं हो रही हैं। हे नाथ! हे वाञ्छाकल्पतरो! आप मुझे अंगीकार करो, सब जन आपकी करुणा-महिमा देखेंगे।।३७।।

मो सम पतित नाई, त्रिभुवने देख चाइ,
नरोत्तम-पावन नाम धर।
घुषुक संसारे नाम, पतित-पावन श्याम,
निज दास कर गिरिधर।।३८।।

त्रिभुवन में देखने से मेरे समान पतित आपको कोई नहीं मिलेगा। मुझे पावन कर दो, आपका नाम 'नरोत्तम-पावन' विख्यात हो जाएगा। मैं भी संसार में आपकी यह घोषणा करूँगा कि श्यामसुन्दर पतित-पावन हैं। हे गिरिधारी! मुझे अपना दास कीजिये।।३८।।

नरोत्तम बड़ दुःखी, नाथ! मोरे कर सुखी,
तोमार भजन-संकीर्त्तने।
अन्तराय नाहि जाय, एइत परम भय,
निवेदन करि अनुक्षणे।।३९।।

हे नाथ! मैं नरोत्तम बहुत दुःखी हूँ, मुझे सुखी कीजिए। आपके भजन-संकीर्त्तन में कहीं इन दुर्वासनाओं से बाधा न उपस्थित हो जाए- यही मुझे बड़ा भय रहता है।।३९।।

आन कथा आन व्यथा, नाहि जेन जाइ तथा,
तोमार चरण-स्मृति माझे।
अविरल अबिकल, तुया गुण कल-कल,
गाई जेन सतेर समाजे।।४०।।

इसलिए मैं प्रतिक्षण यही निवेदन करता हूँ, कि- "दूसरों की ही स्मृति बनी रहे। सबसे मन हटाकर निरन्तर सत् पुरुषों में बैठकर आपके नाम-गुणों का संकीर्त्तन करता रहूँ।।४०।।

अन्य-व्रत अन्य-दान, नाहि कर वस्तु-ज्ञान,
अन्य सेवा अन्य-देव पूजा।
हा हा कृष्ण! बलि बलि, बेड़ाव आनन्द करि,
मने आर नाहि जेन दूजा।।४१।।

अनेक प्रकार के व्रत, जिनका श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण-भक्ति से सम्बन्ध नहीं है, और उसी प्रकार के अनेक दान मैं कभी न करूँ और न ग्रहण करूँ। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ज्ञान को छोड़कर अन्य कोई भी ज्ञान एवं किसी प्रकार की अन्य सेवा न करूँ और किसी भी देवता की पूजा न करूँ।"

मैं तो केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि- "हा कृष्ण! हा कृष्ण!! पुकारते हुए आनन्द में भ्रमण करता रहूँ। मन में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु का आभास भी न रहे।।४१।।

जीवने मरणे गति, राधाकृष्ण प्राण-पति,
दोंहार पिरीति रस-सुखे।
युगल-भजये जारा, मोर प्राण गले हारा,
एइ कथा रहु मोर बुके।।४२।।

जीवित रहूँ तो और मर जाऊँ तो, मेरे प्राणपति श्रीश्रीराधाकृष्ण ही हैं। इन दोनों की प्रीति विधान करके रस में डूबा रहूँ। जो श्रीयुगल-किशोर के भजन में अनुरक्त हैं, वे मेरे प्राण हैं, वही मेरे कण्ठ के हार हैं- बस यही बात मेरे हृदय में सदा बनी रहे"।।४२।।

युगल-चरण सेवा, युगल चरण-ध्येवा,
युगलेइ मनेर पिरीति।
युगल-किशोर रूप, काम-रतिगण भूप,
मने रहु ओ लीला कि रीति।।४३।।

श्रीयुगलकिशोर की चरण सेवा, युगलचरणों का ध्यान, श्रीयुगलकिशोर का काम रति के समान रूप-माधुर्य तथा वे दोनों किस

प्रकार की लीला कर रहे हैं, बस यही सब मेरे मन में स्मृति बनी रहे।।४३।।

दशनेते तृण धरि, हा हा! किशोर-किशोरी!
चरणाब्जे निवेदन करि।
ब्रजराज-कुमार श्याम, वृषभानु-नन्दिनी नाम,
श्रीराधिका नाम-मनोहारी।।४४।।

दन्तों में तृण धारण कर, हे हे किशोर-किशोरि! हे ब्रजराजकुमार श्यामसुन्दर! हे वृषभानुदुलारी! श्रीराधिकादि रमणियों के मनोहारी श्रीकृष्ण! बस मैं आपको निवेदन करता हूँ।।४४।।

कनक-केतकी राइ, श्याम मरकत काइ,
दरप दरप करु चूर।
नटवर शेखरिणी, नटिनीर शिरोमणि,
दुँहु गुणे दुहूँ मन सूर।।४५।।

सुवर्ण केतिकी के समान गौरवर्ण-श्रीराधा एवं मरकतमणि कान्तियुक्त श्रीश्यामसुन्दर- ये दोनों कामदेव के गर्व को चूर-चूर करने वाले हैं। श्रीकृष्ण श्रीराधा के शिरोभूषण हैं और श्रीराधा श्रीकृष्ण की शिरोमणि हैं। एक दूसरे के रूपगुण-माधुर्य में दोनों का मन द्रवित हो रहा है।।४५।।

श्रीमुख सुन्दर वर, हेम नील कान्तिधर,
भावभूषण करु शोभा।
नील-पीत वासधर, गौरी श्याम मनोहर,
अन्तरेर भावे दोंहे लोभा।।४६।।

दोनों के श्रीमुखचन्द्र अतिसुन्दर हैं- श्रीराधा सुवर्ण कान्ति धारिणी हैं तो श्रीकृष्ण नीलकान्ति धारी हैं। दोनों भाव-भूषणों से विभूषित हो रहे हैं। नीलाम्बर तथा पीताम्बर धारण किये हुये श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण दोनों अन्तरंग भावों में लोभित हो रहे हैं।।४६।।

आभरण मणिमय, प्रति अंगे अभिनय,
कहे दीन नरोत्तम दास।
निशि दिशि गुण गाऊँ, परम आनन्द पाऊँ,
मने मोर एइ अभिलाष।।४७।।

दोनों मणिमय भूषणों से विभूषित हैं, इनके प्रत्येक अंग अभिनय पूर्ण हैं। दीन 'नरोत्तमदास' यही प्रार्थना करता है और यही अभिलाषा उसके मन में है कि इन श्रीयुगलकिशोर के गुणों का मैं दिन-रात गान करता रहूँ।।४७।।

रागेर भजन पथ, कहि एवे अभिमत,
लोक-वेद-सर एइ वाणी।
सखीर अनुगा हैया, ब्रजे सिद्धदेह पाइया,
सेइ भावे जुड़ावे पराणी।।४८।।

श्रीठाकुर महाशय कहते हैं, अब मैं रागमार्ग के भजन की बात कहता हूँ, जो वेद-श्रुति आदि भक्ति-शास्त्रों के सम्मत है एवं लोक-वेदों की सार वाणी है। साधक को ब्रज में सिद्ध-देह पाकर श्रीसखीगण का आनुगत्य करते हुए सेवा में अनुरक्त होना चाहिये।।४८।।

श्रीराधिकार सखी जत, ताहा वा कहिव कत,
मुख्य सखी करिये गणन।
ललिता विशाखा तथा, चित्रा चम्पकलता,
रंगदेवी सुदेवी कथन।।४९।।

श्रीराधाजी की असंख्य सखियाँ हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है? इसलिए यहाँ मैं मुख्य सखियों का परिचय देता हूँ। श्रीललिता, श्रीविशाखा, श्रीचित्रा, श्रीचम्पकलता, श्रीरंगदेवी, श्रीसुदेवी।।४९।।

तुंगविद्या इन्दुरेखा, एइ अष्ट सखी लेखा,
एवे कहि नर्म-सखीगण।

राधिका-सहचरी, प्रिय-प्रेष्ठ नाम धरि,
प्रेम सेवा करे अनुक्षण।।५०।।

श्रीतुंगविद्या एवं श्रीइन्दुरेखा- ये आठ प्रमुख सखियाँ हैं। श्रीराधाजी की अब आगे मैं नर्म-सखीगण का वर्णन करता हूँ। वे हैं श्रीराधिकाजी की सहचरी। उनका नाम 'प्रिय-प्रेष्ठ' कहा जाता है। ये प्रिय नर्म-सहचरी-मञ्जरीगण प्रतिक्षण श्रीश्रीराधाकृष्ण की प्रेम-सेवा करती रहती हैं।।५०।।

समस्नेहा विषमस्नेहा, ना करिह दुइ लेहा,
कहि मात्र अधिक स्नेहागण।
निरन्तर थाके संगे, कृष्णकथा लीलारंगे,
नर्मसखी एइ सब जन।।५१।।

सम-स्नेहा तथा विषम-स्नेहा— इन दोनों के प्रकार भेद का यहाँ निरूपण नहीं कर रहा हूँ। यहाँ केवल अधिक-स्नेहा नर्म-सहचरियों का वर्णन करता हूँ। ये नर्म सखीवृन्द निरन्तर श्रीश्रीराधाकृष्ण निभृत केलिविलास में उनके साथ रहती हैं।।५१।।

श्रीरूप मञ्जरी सार, श्रीरति मञ्जरी आर,
लवंग मञ्जरी मञ्जुलाली।
श्रीरस मञ्जरी संगे, कस्तुरिका आदि रंगे,
प्रेमसेवा करि कुतुहली।।५२।।

वे नर्म-सखी हैं— श्रीरूप मञ्जरी, श्रीरति मञ्जरी, श्रीलवंग मञ्जरी, श्रीमञ्जुलाली मञ्जरी, श्रीरस मञ्जरी तथा श्रीकस्तूरी मञ्जुरी आदि। ये सब चमत्कारमयी प्रेमसेवा करती हैं।।५२।।

ए सवार अनुगा हैया, प्रेमसेवा निव चाइया,
इंगिते बुझिव सब काज।
रूपे गुणे डगमगि, सदा हव अनुरागी,
वसति करिव सखी माझे।।५३।।

मैं इनका अनुगमनकारी होकर श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा की इनसे प्रार्थना करूँ। थोड़े संकेत से मैं सब सेवा-कार्य समझ लुंगी। श्रीयुगलकिशोर के रूप-गुण में विभोर होकर सदा उनकी अनुरागिणी बनूंगी और सदाँ सखियों के बीच में ही निवास करूँगी।।५३।।

वृन्दावने दुइजन, चारिदिके सखीगण,
समय बुझिया रस-सुखे।
सखीर इंगित हवे, चामर दुलाव तवे,
ताम्बूल जोगाव चाँदमुखे।।५४।।

श्रीवृन्दावन में श्रीश्रीराधाकृष्ण दोनों विराजमान होंगे और उनके चारों ओर सखीगण उपस्थित होंगी। सब समयोचित सेवा-सुख में निमग्न होंगी। श्रीगुरु-रूपा सखी का इंगित पाकर मैं उनको चँवर ढुराऊँगी और दोनों के श्रीचन्द्रमुख में ताम्बूल अर्पण करूँगी।।५४।।

युगल चरण सेवि, निरन्तर एइ भावि,
अनुरागी थाकिव सदाय।
साधने भाविव याहा, सिद्धदेहे पाव ताहा,
रागपथेर एइ से उपाय।।५५।।

'मैं श्रीयुगल-चरणों की सेवा कर रही हूँ'- निरन्तर मैं यही चिन्तन करूँगी और उनके अनुराग में निरन्तर निमग्न रहूँगी। साधन-भक्ति में जिस सेवा का चिन्तन किया जाता है, सिद्ध-देह से (अन्तः चिन्तित मञ्जरी रूप से) वही सेवा प्राप्त होती है। रागपथ में प्रवेश का यही साधन है।।५५।।

साधने जे धन चाई, सिद्धदेहे ताहा पाइ,
पक्वापक्व मात्र से विचार।
पाकिले से प्रेमभक्ति, अपक्वे साधने रीति,
भकति लक्षण तत्त्वसार।।५६।।

साधन अवस्था में जिस सेवा-सम्पत्ति की अभिलाषा की जाती है, सिद्धदेह में वही प्राप्त होती है। साधनावस्था तथा सिद्ध-अवस्था में केवल अपरिपक्व तथा परिपक्व अवस्था का भेद है। अपरिपक्व साधन-भक्ति परिपक्व होने पर प्रेमभक्ति नाम धारण करती है। साधन-भक्ति तथा प्रेमभक्ति के लक्षणों का यही तत्त्व है।।५६।।

नरोत्तम दास कय, एइ जेन मोर हय,
ब्रजपुरे अनुरागे वास।
सखीगण-गणनाते, आमारे लिखिवे ताते,
तबहि पूरव अभिलाष।।५७।।

श्रीनरोत्तम दास महाशय कहते हैं- मैं बस यही चाहता हूँ कि ब्रज में मेरा अनुराग से वास हो। सखीगण की दासी होने के नाते श्रीप्रिया-प्रियतम भी मुझे अपनी दासी मान लें- तभी मेरी मनोभिलाषा पूर्ण होगी।।५७।।

सखीनां संगिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञा-सेवापरां तत्तदरूपालंकारभूषिताम्।।५८।।

इस श्लोक में सिद्ध-देह की भावना का वर्णन किया गया है- मैं श्रीललिता-विशाखा व श्रीरूपमञ्जरी आदि सखियों के सदा साथ रहने वाली हूँ। उनकी अनुमति पाकर श्रीराधामाधव की सेवा करने वाली एक दासी हूँ। श्रीकृष्ण के मन को भी हरणकारी श्रीराधाजी के अलंकारों से मैं विभूषित हूँ तथा श्रीयुगल-किशोर की प्रेमसेवा की कामना द्वारा ही मेरे सब अंग विभावित हैं- इस प्रकार अपने सिद्धदेह की भावना करनी चाहिये।।५८।।

कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज समीहितम्।
तत्तत् कथा रतश्चासौ कुर्यादवासं ब्रजे सदा।।५९।।

निज प्रेष्ठ भावोचित लीला-विलासी श्रीकृष्ण तथा उनके प्रियजनों का स्मरण करते हुए, उनकी कथा में अनुरक्त रहना चाहिये तथा ब्रज में सदा वास करना चाहिये।।५९।।

युगलचरणे प्रीति, परम आनन्द तथि,
रति प्रेममय परबन्धे।
कृष्णनाम राधानाम, उपासना रसधाम,
चरणे पड़िया परानन्दे।।६०।।

श्रीश्रीराधाकृष्ण की चरण-प्रीति में ही परम आनन्द की पराकाष्ठा है तथा श्रीकृष्ण-भक्ति रसज्ञ भक्तजनों के विरचित प्रेममय प्रबन्धों (ग्रंथों) में सदा रुचि हो। श्रीकृष्णनाम तथा श्रीराधानाम रस के परम उत्स हैं, अतः उनके चरणों में पड़कर परमानन्दपूर्वक उन नामों का श्रवण कीर्त्तन करें।।६०।।

मनेर स्मरण प्राण, मधुर मधुर धाम,
युगल-विलास स्मृति-सार।
साध्य साधन एई, इहा वइ आर नाइ,
एइ तत्त्व सर्वविधिसार।।६१।।

मन का प्राण है- 'स्मरण'। स्मरण के बिना मन मानो निर्जीव है। इसलिए मधुरातिमधुर रसधाम श्रीयुगल-विलास का स्मरण करें। क्योंकि यही सर्व स्मरणों का सार है। श्रीयुगल-विलास का ही स्मरण साध्य और साधन है, इसको छोड़कर और कोई साध्य-साधन नहीं है। समस्त उपासनाओं का यही सार है।।६१।।

जलद-सुन्दर काति, मधुर मधुर भाति,
वैदगधि अवधि सुवेश।
पीत-वसनधर, आभरण-मणिवर,
मयूर चन्द्रिका करु केश।।६२।।

कैसा रूप माधुर्य स्मरणीय है श्रीकृष्ण का? नवीन मेघ की भाँति सुन्दरकान्ति है उनकी। मधुरातिमधुर शोभा और वैदग्धि की पराकाष्ठा है उनकी वेश-भूषा। पीताम्बर धारण करते हैं, मणि जटित अलंकारों से विभूषित हैं तथा सिर पर केशों में मोरपुच्छ सुशोभित है।।६२।।

मृगमद-चन्दन, कुंकुम-विलेपन,
मोहन मूरति-त्रिभंग।
नवीन कुसुमावली, श्रीअंगे शोभये भालि,
मधुलोभे फिरे मत्त-भृंग।।६३।।

कस्तूरी, चन्दन तथा केसर का तिलक लगाये हैं, कैसी अद्‌भुत मनोहर त्रिभंग मूर्ति है! नवीन पुष्पों की मालाएँ श्रीअंगों पर धारण कर रहे हैं, जिन पर मकरन्द के मतवाले भ्रमर गुञ्जन कर रहे हैं।।६३।।

ईषत मधुर-स्मित, वैदग्धि लीलामृत,
तुबधल ब्रजवधूवृन्द।
चरण-कमल पर, मणिमय नूपुर,
नखमणि जेन बालचन्द।।६४।।

वे मन्द-मन्द हास्य कर रहे हैं। लीलावैदग्धि का अमृत स्वरूप हैं, जिसके लिये ब्रजरमणीवृन्द लुब्ध हो रही हैं। उनके श्रीचरणकमलों में मणिमय नूपुर और श्रीचरणनख मणियाँ द्वितीया के चन्द्र की छवि धारण कर रही हैं।।६४।।

नूपुर मराल ध्वनि, कुलवधू मरालिनी,
शुनिया रहिते नारे घरे।
हृदय बाड़ाये रति, जेन मिले पति सती,
कुलेर धरम गेल दूरे।।६५।।

नूपुर मरालों की ध्वनि को सुनकर कुलवधू रूपी राजहंसिनी गृह में नहीं रह सकतीं। हृदय में अनुराग उछल उठता है और सती रमणी

जैसे अपने पति को मिलने के लिए अधीर हो उठती हैं, वैसे वे कुलधर्म को त्याग कर बाहर आ जाती हैं।।६५।।

गोविन्द-शरीर सत्य, ताहार सेवक नित्य,
वृन्दावन भूमि तेजोमय।
ताहाते यमुना जल, करे नित्य झलमल,
तार तीरे अष्टकुञ्ज हय।।
त्रिभुवने शोभासार, हेन स्थान नांहि आर,
याहार स्मरणे प्रेम हय।।६६।।

श्रीगोविन्द का श्रीविग्रह नित्य है एवं उनके सेवक भी नित्य हैं। श्रीवृन्दावन भूमि अलौकिक तेजोमय है। त्रिभुवन में श्रीवृन्दावन के समान शोभा का सार स्थान और कोई नहीं है। इसका स्मरण करने मात्र से श्रीयुगल-प्रेम आविर्भूत हो उठता है। तेजमय वृन्दावन में यमुना जल प्रतिक्षण डगमग रहा है। यमुनाजी के तलहटी में आठ कुंज विराजमान हैं।।६६।।

शीतल किरण कर, कल्पतरु गुणधर,
तरुलता छय ऋतु शोभा।
पूर्णचन्द्र सम ज्योति, चिदानन्दमय मूर्त्ति,
महालीला दरशन लोभा।।
गोविन्द आनन्दमय, निकटे वनिताचय,
मधुर बिहार अति शोभा।।६७।।

श्रीवृन्दावन में अति शीतल चन्द्र ज्योत्स्ना छा रही है, समस्त वृक्ष कल्पतरुओं के समान गुणशाली हैं जो समस्त मनोवाञ्छा पूर्ण करने वाले हैं। तरुलता हर समय फल-फूल प्रदान करते हैं, छः ऋतुऐं सदा यहाँ सेवा करती हैं। आनन्दमय श्रीगोविन्द के चारों ओर परिवेष्टित ब्रज-रमणियों से मधुर विहार करते हुए अति शोभा विस्तार कर रहे हैं।।६७।।

दुहुँ प्रेम डगमगि, दोंहे दोंहा अनुरागी,
दुहुँ रूपे दुहुँ मन लोभा।।
ब्रजपुर वनितार, चरण-आश्रय सार,
कर मन एकान्त करिया।
अन्यबोल गण्डगोल, ना शुनह उत्तरोल,
राख प्रेम हृदय भरिया।।६८।।

दोनों ही दोनों के प्रेम में डगमगा रहे हैं। दोनों के ऊपर दोनों की आसक्ति है और दोनों के रूप में दोनों का मन लोभी है।

हे मन! ब्रजरमणियों के श्रीचरणकमलों का आश्रय ही परम सार उपाय है। उनकी ही एकान्त शरण ग्रहण कर। अन्य जितनी बातें या साध्य-साधन हैं, सब गण्डगोल भरे हैं, वञ्चनामात्र हैं, उनको तू किन्चित् भी न सुन। एकमात्र श्रीश्रीराधाकृष्ण के प्रेमपूर्वक सेवन में ही हृदय को नियुक्त कर।।६८।।

पाप-पुण्यमय देह, सकलइ अनित्य एह,
धन जन सब मिछा धन्द।
मरिले जाइवे कोथा, इहाते ना पाओ व्याथा,
तबु निति कर कार्य मन्द।।६९।।

अरे भाई! यह देह तो पाप-पुण्यमय हैं, अतः यह देह अनित्य है। इसलिये देह से सम्बन्धित धन, स्त्री-पुत्र-बन्धु-बान्धव भी सब असत्य धन्धा हैं। यह धन-जन सब तेरे मरने के बाद कहाँ जाएंगे, तू इस विषय में कोई दुःख मत कर। यह सब जानकर भी तू नित्य पाप कर्मों में लगा हुआ है।।६९।।

राजार जे राज्यपाट, जेन नाटुयार नाट,
देखिते देखिते किछु नय।
हेन माया करे जेइ, परम ईश्वर सेई,
तारे मन! सदा कर भय।।७०।।

राजा का जो राज्य पाट है, वह भी एक मदारी का-सा खेल है, देखते-देखते न जाने कहाँ चला जाता है। इस प्रकार की माया को जो सृजन करने वाले हैं, वे परमेश्वर हैं। हे मन! तू उनसे सदा भय कर और दुष्कर्मों से दूर रह।।७०।।

पापे ना करिह मन, अधम से पापी जन,
तारे मन दूरे परिहरि।
पुण्य जे सुखेर धाम, तार ना लइओ नाम,
पुण्य मुक्ति दुई त्याग करि।।७१।।

हे मन! तू पाप मत कर। जो पापी नीच पुरुष हैं, दूर से ही उनका त्याग कर। पुण्य कर्मों से तुम्हें सुख भोग मिलेंगे, इस बात को मुँह पर मत लाना। पुण्य कर्म (भुक्ति) तथा मुक्ति- इन दोनों का त्याग कर दे।।७१।।

प्रेम भक्ति सुधा निधि, ताहे डुब निरवधि,
आर जत क्षारनिधि प्राय।
निरन्तर सुख पावे, सकल सन्ताप जावे,
परतत्व कहिल उपाय।।७२।।

एकमात्र प्रेमभक्ति ही सुखसुधा का भण्डार है, उसमें ही तू निरन्तर निमग्न हो। अतः प्रेमभक्ति द्वारा ही तू शाश्वत आनन्द को प्राप्त करेगा और समस्त दुःख-सन्ताप तेरे नष्ट हो जायेंगे- यही सर्व साधनों का परमतत्त्व है, जो मैंने तुम्हें सुनाया है।।७२।।

अन्येर परश जेन, नाहि हय कदाचन,
इहाते हइवे सावधान।
राधाकृष्ण नाम गान, एइ से परम ध्यान,
आर न करिह परमाण।।७३।।

दूसरे साधनों का कहीं मन स्पर्श न करे, इसके लिए तू सदा सावधान रह। श्रीराधा-श्रीकृष्ण के नामों का संकीर्त्तन ही परम ध्यान है।

इसे छोड़कर और किसी साधन को तू प्रमाण रूप में न ग्रहण कर।।७३।।

कर्मी ज्ञानी मिच्छाभक्त, ना हवे ताते अनुरक्त,
विशुद्ध भजन कर मन।
ब्रज जनेर जेइ रीत, ताहाते डुबाओ चित,
एइ से परम-तत्त्व धन।।७४।।

कर्मी एवं ज्ञानी तो कपटी एवं झूठे भक्त हैं, उनमें कभी आसक्त न होना। एकमात्र कर्म-ज्ञान से अमिश्रित शुद्ध भक्ति का अनुष्ठान कर। यही ब्रज परिकरों की भजन-रीति है- इसी में ही मन को निमग्न कर दो। समस्त शास्त्र की तत्त्व-सम्पत्ति यही है- इसे प्राप्त कर।।७४।।

प्रार्थना करिव सदा, शुद्ध भावे प्रेम कथा,
नाम मंत्रे करिया अभेद।
नैष्ठिक करिया मन, भज रांगा श्रीचरण,
पाप-ग्रंथि हवे परिच्छेद।।७५।।

हे मन! सदाँ शुद्धभक्ति भाव से प्रेम-प्राप्ति की प्रार्थना करो। श्रीनाम, दीक्षामंत्र तथा श्रीनामी में सदा अभेद भावना करो। मन में यह दृढ़ निष्ठा रखकर श्रीश्रीराधाकृष्ण के अरूण श्रीचरणकमलों का भजन करो, समस्त पापों की ग्रंथियाँ अनायास छूट जाएंगी।।७५।।

राधाकृष्ण-सेवन, एकान्त करिया मन,
चरणकमल बलि जाऊँ।
दोंहार नाम गुण शुनि, भक्त मुखे पुनि पुनि,
परम आनन्द सुख पाऊँ।।७६।।

श्रीश्रीराधाकृष्ण की सेवा ही एकान्त मन से सम्पादित करो। उन्हीं के श्रीचरणकमलों पर आत्मसमर्पण करो। वैष्णवजन के मुख से बार-बार श्रीराधा-श्रीकृष्ण इन दोनों नामों का श्रवण करें, इसी में परम आनन्द का तुम अनुभव प्राप्त करोगे।।७६।।

हेम गौरी-तनु राई, आँखि दरशन चाई,
रोदन करये अभिलाषे।
जलधर ढर-ढर, अंग अति मनोहर,
रूपे भुवन परकाशे।।७७।।

श्रीराधाजी का श्रीअंग स्वर्ण की भाँति गौर है, जिसका दर्शन मैं नेत्रों से करना चाहता हूँ। इस अभिलाषा में मैं क्रन्दन करता रहता हूँ। जलधर के समान मनोहर नील वसन उनके अंगों पर शोभा दे रहा है। वे अपने रूप-गुण से त्रिभुवन को प्रकाशित कर रही हैं।।७७।।

सखीगण चाहि पाशे, सेवा करि अभिलाषे,
से सेवा परम सुख धरे।
एइ मन तनु मोर, एइ रसे सदा भोर,
नरोत्तम सदाई विहरे।।७८।।

उनके चारों ओर सखीवृन्द विद्यमान हैं और सेवा की अभिलाषा लिए खड़ी हैं। उस सेवा में ही वे अपना परम सुख मानती हैं। श्रीनरोत्तम ठाकुर कहते हैं- मेरा तन-मन भी उसी सेवा अभिलाष में सदा उत्कण्ठित रहे, यही मेरी प्रार्थना है।।७८।।

राधाकृष्ण कर ध्यान, स्वप्नेह ना बलो आन,
प्रेम बिना आन नाहि चाओ।
युगलकिशोर-प्रेम, जेन लक्षवान हेम,
आरति पिरिति रसे ध्याओ।।७९।।

हे मन! श्रीश्रीराधाकृष्ण का ही ध्यान करो एवं स्वप्न में भी और कुछ नहीं बोलो। श्रीयुगलप्रेम को छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहो। श्रीयुगलकिशोर का प्रेम लाख बार तपे हुए स्वर्ण के समान अति निर्मल-विशुद्ध है। आर्तिपूर्वक प्रीति रस स्वरूप से उसका चिन्तन करो।।७९।।

जल विनु जेन मीन, दुःख पाय आयुहीन,
प्रेम विना सेइ मत भक्त।
चातक जलद-गति, एमति एकान्त-रीति,
जेइ जाने सेइ अनुरक्त।।८०।।

मीन जैसे जल के बिना दुःखी होकर प्राण त्याग देती है, ऐसे ही भक्त को होना चाहिए कि युगलप्रेम के बिना जीवन त्याग दे। चातक की जैसे एकमात्र गति स्वाति नक्षत्र का मेघ-जल है, उसी प्रकार जो युगलप्रेम को ही अपनी एकान्त गति जानता है, वास्तव में वही प्रेमीभक्त है।।८०।।

लुबध भ्रमर जेन, चकोर चन्द्रिका तेन,
पतिव्रता-जनेर जेन पति।
अन्यत्र ना चले मन, जेन दरिद्रेर धन,
एइ मत प्रेमभक्ति रीति।।८१।।

सौरभ (सुगन्ध) का लोभी जैसे भ्रमर है, चकोर जैसे चन्द्रिका का लोभी है एवं पतिव्रता की जैसी प्रीति अपने पति में रहती है, उसका मन जैसे और किसी ओर नहीं चलता और दरिद्र व्यक्ति को जैसे धन प्रिय होता है- उसी प्रकार प्रेमभक्ति की रीति है अर्थात् प्रेमीभक्त का सर्वस्व एकमात्र श्रीयुगलकिशोर की सेवा है। (प्रेमीभक्त श्रीयुगलकिशोर की प्रेमसेवा का ही लोभी बना रहता है)।।८१।।

विषय गरल मय, ताते मान सुखचय,
सेई सुख दुःख करि मान।
गोविन्द-विषय रस, संग कर तार दास,
प्रेमभक्ति सत्य करि जान।।८२।।

इन्द्रियों के विषय विषमय हैं; अरे मूर्ख! तू उन्हें सुखराशि मान रहा है। जब उस विषय को तू परम दुःख रूप में अनुभव करेगा और श्रीगोविन्द-विषय-रस (प्रेम-भक्ति-रस) में गोता लगाएगा और श्रीगोविन्द

के भक्तों का संग करेगा, तभी समझ कि तूने प्रेमभक्ति के स्वरूप को वास्तव में जान लिया है।।८२।।

मध्ये मध्ये आछे दुष्ट, दृष्टि करि हय रुष्ट,
गुण हि विगुण करि माने।
गोविन्द विमुखजने, स्फूर्ति नहे हेन धने,
लौकिक करिया सब जाने।।८३।।

मनुष्य में जब बीच-बीच में पाप संस्कार आकर उदय होते हैं, तब वह श्रीकृष्णभक्तों के प्रेमाचरण को देखकर रुष्ट हो उठता है- उनसे घृणा करने लगता है और गुण को भी दोष मानने लगता है। ऐसे श्रीगोविन्द-विमुख लोगों में प्रेमधन का स्वरूप स्फुरित नहीं होता। वे भगवत्-प्रेम को भी लौकिक प्रेम मान बैठते हैं।।८३।।

अज्ञान विमुग्ध जत, नाहि लय सतमत,
अहंकारे ना जाने आपना।
अभिमानी भक्तिहीन, जग माझे सेई दीन,
वृथा तार अशेष भावना।।८४।।

इस प्रकार जो लोग अज्ञान से अन्धे हो रहे हैं, वे सत् वस्तु के विषय को ग्रहण नहीं कर पाते और वे अहंकार वश अपने कृष्णदास-स्वरूप को भी नहीं जान पाते। जो अभिमानी लोग भक्ति-विहीन हैं, वे जगत् में वस्तुतः अति दीन-हीन हैं, उनकी समस्त भावनाएँ, यहाँ तक कि जीवन भी व्यर्थ है।।८४।।

आर सब परिहरि, परम ईश्वर हरि,
सेव मन! प्रेम करि आश।
एक ब्रजराज पुरे, गोविन्द रसिकवरे,
करह सदाइ अभिलाष।।८५।।

इसलिए हे मन! अन्य समस्त कामना एवं चेष्टा त्याग कर परमेश्वर श्रीहरि का ही भजन करो, प्रेमपूर्वक उनकी प्राप्ति की ही

आशा करो। भौम-वृन्दावन में श्रीगोविन्द के रसिक भक्तों के संग की सदा अभिलाषा करो।।८५।।

'नरोत्तमदास' कहे, सदा मोर प्राण दहे,
हेन भक्त संग ना पाइया।
अभाग्येर नाहि ओर, मिच्छाइ हइनु भोर,
दुःख रहु अन्तरे जागिया।।८६।।

श्रीनरोत्तम ठाकुर कहते हैं, ऐसे प्रेमी-रसिकों का संग मुझे प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए मेरे प्राण जलते रहते हैं। मेरे अभाग्यों का अंत नहीं है और यह मेरा मानव-जीवन व्यर्थ जा रहा है। यही अतिशय दुःख मेरे हृदय में बना हुआ है।।८६।।

वचनेर अगोचर, वृन्दावन लीला स्थल,
स्वप्रकाश प्रेमानन्दघन।
जाहाते प्रकट सुख, नाहि जरा-मृत्यु दुःख,
कृष्णलीलारस अनुक्षण।।८७।।

श्रीवृन्दावन स्वप्रकाश व प्रेमानन्दघनमय है, जिसकी महिमा अनिर्वचनीय है। जिस भाग्यवान को इसका सुख अनुभव हुआ है। उसके लिए फिर जरा-मृत्यु का दुःख नहीं रहता। वह प्रतिक्षण श्रीकृष्ण-लीला रस में विभोर रहता है।।८७।।

राधाकृष्ण दुँहु प्रेम, लक्षवान जेन हेम,
जाहार हिल्लोल रससिन्धु।
चकोर नयन प्रेम, काम-रति करे ध्यान,
पिरीति सुखेर दुँहु बन्धु।।८८।।

श्रीश्रीराधाकृष्ण का प्रेम अति विशुद्ध तप्त स्वर्ण की भाँति निर्मल है, जिसमें प्रेमरससिन्धु हिलोरें ले रहा है। श्रीश्रीराधाकृष्ण दोनों प्रेम-सुख के चन्द्र हैं एवं साक्षात् काम एवं रति भी चकोर की भाँति प्रेम रूपी नयनों से इनका ध्यान करते रहते हैं।।८८।।

राधिका प्रेयसी वरा, वामदिके मनोहरा,
कनक केशर-कान्ति धरे।
अनुरागे रक्त-साड़ी, नीलपट्ट मनोहारी,
मणिमय आभरण परे।।८६।।

श्रीकृष्ण की वाम दिशा में सर्वप्रेयसियों में श्रेष्ठ श्रीराधाजी मनोहर रूप में विराज रही हैं। उनकी अंग कान्ति स्वर्ण तथा केशर की कान्ति को भी पराजित करने वाली है। नील वर्ण की रेशमी साड़ी वह धारण कर रही हैं, जो कृष्णानुराग के लाल वर्ण की शोभा देती है; मणिमय अनेक भूषण वह धारण कर रही हैं।।८६।।

करये लोचन पान, रूप लीला दुँहु गान,
आनन्दे मगन सहचरी।
वेदविधि अगोचर, रतन-वेदीर पर,
सेव निति किशोर-किशोरी।।९०।।

सहचरीवृन्द अपने नेत्रों से दोनों की रूप-सुधा का पान कर रही है एवं दोनों के रूप, लीला का आनन्दमग्न होकर गान कर रही हैं। श्रीयुगलकिशोर रत्नवेदी पर विराजमान हैं, जो वेद एवं ब्रह्मादिक के पक्ष में भी अगोचर हैं। रे मन! ऐसे श्रीकिशोर-किशोरी की नित्य सेवा करो।।९०।।

दुर्लभ भजन हेन, नाहि भज हरि केन,
कि लागि मरह भवबन्धे।
छाड़ अन्य क्रियाकर्म, नाहि देख वेद धर्म,
भक्ति कर कृष्णपद द्वन्दे।।९१।।

अरे मूर्ख! ऐसा भजन (रागानुगा उपासना) दुर्लभ है। तू हरि की सेवा क्यों नहीं करता? किसलिए तू भवबन्धन में मर रहा है? समस्त कर्म-क्रियाओं का परित्याग कर, वेद-धर्म अर्थात् वर्णाश्रम धर्मों की ओर मत झाँक। केवल श्रीकृष्ण के श्रीचरणकमलों की भक्ति कर।।९१।।

विषय विषम गति, नाहि भज ब्रजपति,
कृष्णचन्द्र चरण सुखसार।
स्वर्ग आर अपवर्ग, संसार नरक भोग,
सर्वनाश जन्म विकार।।९२।।

तेरे विषयों के वश में होकर विपरीत बुद्धि हो रही है, तभी तो तू ब्रजपति श्रीकृष्ण का भजन नहीं करता। देख, श्रीकृष्णचन्द्र के श्रीचरणकमल ही सर्व सुखों का सार हैं। स्वर्ग, मोक्ष अथवा सांसारिक सुख– ये सब नरक-भोग के समान दुःखदायी हैं। इनके पीछे लग कर तेरा सर्वनाश हो रहा है और बार-बार जन्म-मरण रूपी विकार को तू प्राप्त हो रहा है।।९२।।

देहे ना करिह आस्था, मरिले से यम शास्ता,
दुंखेर समुद्र कर्मगति।
देखिया शुनिया भज, साधुशास्त्र मत यज,
युगलचरणे कर रति।।९३।।

रे मन! देह में अहंता-ममता या अभिनिवेश मत कर, क्योंकि मरने के बाद यम-दण्ड भोगना पड़ेगा। कर्मों की गति तो दुःख का समुद्र ही है। यह बात तू दिन-रात देख रहा है और साधु शास्त्र मुख से सुन भी रहा है। इसलिए जैसे साधु-शास्त्र कहते हैं उसी प्रकार श्रीयुगल चरणारविन्द का तू भजन कर एवं उनकी प्रीति प्राप्त कर।।९३।।

ज्ञानकाण्ड कर्मकाण्ड, केवलि विषेर भाण्ड,
अमृत बलिया जेवा खाय।
नाना योनि सदा फिरे, कदर्य भक्षण करे,
तार जनम अधःपाते जाय।।९४।।

ज्ञान-मार्ग हो चाहे कर्म-मार्ग— ये दोनों विषभरे पात्र है, जिन्हें तू अमृत जानकर पी रहा है। इसलिये तुमको अनेक योनियों में भ्रमण

करना पड़ेगा और वहाँ तुच्छ सुखों का भोग करेगा। इसके पीछे तेरे जनम का अधःपतन हो रहा है।।९४।।

राधाकृष्णे नाहि रति, अन्य देवे बलि पति,
प्रेमभक्ति रीति नाहि जाने।
नाहि भक्तिर संधान, भरमे करेय ध्यान,
वृथा तार एछार जीवने।।९५।।

जिस व्यक्ति की श्रीश्रीराधाकृष्ण में प्रीति नहीं है, और अन्यान्य देवों को अपना स्वामी कहता है, वह प्रेमभक्ति की रीति नहीं जानता। उसे भक्ति का संधान ही नहीं है और भ्रम में पड़ा हुआ है। उसका जीवन तुच्छ है एवं व्यर्थ जा रहा है।।९५।।

ज्ञान कर्म करे लोक, नाहि जाने भक्तियोग,
नाना मते हइया अज्ञान।
तार कथा नाहि शुनि, परमार्थ तत्त्व जानि,
प्रेम-भक्ति भक्तगण प्राण।।९६।।

प्रायः लोग ज्ञानयोग तथा कर्मयोग करते हैं और भक्तियोग का उन्हें संधान ही नहीं है। वे अनेक मतमतान्तरों (कलियुग में प्रचलित नये पाखण्ड युक्त पंथों) में अज्ञान-वश भ्रमण कर रहे हैं। जो परमार्थ तत्त्व को जानने वाले हैं और प्रेमभक्ति जिन भक्तों की प्राण धन है, उनकी बात को वे सुनते ही नहीं- कितने दुःख का विषय है?।।९६।।

जगत व्यापक हरि, अज-भव आज्ञाकारी,
मधुर मूरति लीलाकथा।
एइ तत्त्व जाने जेई, परम उत्तम सेइ,
तार संग करिव सर्वथा।।९७।।

श्रीकृष्ण सब जगत् में व्यापक हैं और ब्रह्मा-शिवादि भी उनकी आज्ञा में सदा विचरण करते हैं। उनका श्रीविग्रह अति मधुर है और

उनकी लीला-कथाएं भी अति मधुर हैं- इस तत्त्व को जो जानता है, वही परम श्रेष्ठ-व्यक्ति है, उसका ही संग सदा करना चाहिये।।९७।।

परम नागर कृष्ण, ताहे हव अति-तृष्ण,
भज ताँरे ब्रजभाव लैया।
रसिक भकत संगे, रहिव पिरीति रंगे,
ब्रजपुरे वसति करिया।।९८।।

श्रीकृष्ण परम चतुर हैं, उनमें तीव्र उत्कण्ठायुक्त होकर ब्रजभाव के अनुगत होकर उनका भजन करो। हे मन! रसिक भक्तों के संग में सदाँ उनके प्रेम रंग में निमग्न रह एवं सदा श्रीब्रजमण्डल में वास कर।।९८।।

श्रीगुरु भकतजन, ताहार चरणे मन,
आरोपिया कथा अनुसारे।
सखीर सर्वथा मत, हइया ताहार यूथ,
सदाई विहरे ब्रजपुरे।।९९।।

श्रीगुरुदेव तथा भक्तों के श्रीचरणों में मन लगाकर तथा उनके उपदेशानुसार सखीवृन्द के आनुगत्य में उनके यूथ में रहकर सदा श्रीब्रजधाम में विचरण करना चाहिये।।९९।।

लीलारस सदा गान, युगलकिशोर प्राण,
प्रार्थना करिब अभिलाष।
जीवने मरणे एइ, आर किछु नाहि चाई,
कहे दीन 'नरोत्तमदास'।।१००।।

"श्रीयुगलकिशोर प्राणजीवन के लीला-रस का सदा गान करता रहूँ"– इसी अभिलाषा की मैं प्रार्थना करूँगा। श्रील नरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं– मैं तो जीवन में अथवा मरण में यही चाहता हूँ और मुझे कुछ नहीं चाहिए।।१००।।

आन कथा ना बलिव, आन कथा न शुनिव,
सकलि कहिब परमार्थ।
प्रार्थना करिव सदा, लालसा अभीष्ट कथा,
इहा बिना सकलि अनर्थ।।१०१।।

श्रीयुगलकिशोर की लीलाकथा के व्यतीत और कोई बात न बोलूँ और न सुनूँ- उसके द्वारा ही मैं अपना परमार्थ सिद्ध करूँ। केवल यही मन की लालसा है मुझे, यही मैं सदाँ प्रार्थना करूँगा। इसको छोड़कर और सब अनर्थ ही हैं।।१०१।।

ईश्वरेर तत्त्व जत, ताहा वा कहिव कत,
अनन्त अपार केवा जाने।
ब्रजपुर प्रेम सत्य, एइ से परम तत्त्व,
भज भज अनुराग मने।।१०२।।

श्रीकृष्ण-तत्त्व का कहाँ तक मैं वर्णन करूँ? वह अनन्त अपार हैं, कौन जान सकता है? श्रीब्रज परिकरों का कृष्णप्रेम है, वह सत्य है और वही परमतत्त्व है, इसलिये हे मन! उस ब्रजप्रेम-भक्ति का अनुरागपूर्वक भजन कर, अनुष्ठान कर।।१०२।।

गोविन्द गोकुलचन्द, परमा आनन्दकन्द,
परिवार-गोपगोपी संगे।
नन्दीश्वर जाँर धाम, गिरिधारी जाँर नाम,
सखी संगे ताँरे भज रंगे।।१०३।।

गोकुलचन्द्र श्रीगोविन्द परम आनन्द के मूल हैं। उनके परिकर हैं- गोप-गोपीगण एवं उनका निवास-स्थान है- श्रीनन्दग्राम। उनको श्रीगिरिधारी कहते हैं। श्रीराधा आदि सखियों के साथ सदा प्रेमपूर्वक उनका भजन कर।।१०३।।

प्रेमभक्ति तत्त्व एई, तोमारे कहिनु भाई,
आर दुर्वासना परिहरि।

श्रीगुरु प्रसादे भाई, ए सब भजन पाई,
प्रेमभक्ति सखी अनुचरी।।१०४।।

बस यही प्रेमभक्ति का तत्त्व है, जो मैंने तुमसे कहा है। हे भाई! और सब दुर्वासनाओं का त्याग कर। यह सब भजन एकमात्र श्रीगुरुदेव की कृपा से प्राप्त होता है। तभी सखीवृन्द अपनी दासी रूप में स्वीकार करती हैं।।१०४।।

सार्थक भजन-पथ, साधु संगे अविरत,
स्मरण भजन कृष्णकथा।
प्रेमभक्ति हय यदि, तबे हय मन शुद्धि,
तबे जाय हृदयेर व्यथा।।१०५।।

भजन-पथ वही सार्थक है, जिसमें निरन्तर भक्तों का संग प्राप्त हो और श्रीकृष्ण-नाम-रूप-गुण-लीला-कथा का स्मरण होता हो। यदि इस प्रेमभक्ति की प्राप्ति हो जाये, तभी मन निर्मल हो जाता है। तभी हृदय के समस्त त्रिताप मिट जाते हैं।।१०५।।

विषय विपत्ति जान, संसार स्वप्न मान,
नरतनु भजनेर मूल।
अनुरागे भज सदा, प्रेमभावे लीला-कथा,
आर जत हृदयेर शूल।।१०६।।

जितने भी विषय हैं, हे भाई! उन्हें विपत्ति ही जानो। इस संसार को तो स्वप्न की भाँति मिथ्या जानो। यह मानव जन्म ही भजन का मूलाधार है। मानव-जन्म को छोड़कर सुर-असुर, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियों में कहीं-भी इस भजन को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। इसलिए भाई! अनुरागपूर्वक श्रीकृष्ण का भजन कर और उनकी लीला कथाओं का स्मरण-चिन्तन कर। इस कृष्ण-भजन को छोड़कर जितनी भी कामनायें हैं, सुख-सम्पत्ति आदिक हैं, वे सब हृदय के शूल

ही हैं। श्रीकृष्णभजन के बिना उनका कभी विनाश नहीं हो सकता।।१०६।।

राधिका-चरणरेणु, भूषण करिया तनु,
अनायासे पावे गिरिधारी।
राधिका चरणाश्रय, जे करे से महाशय,
तारे मुइ जाउ बलिहारी।।१०७।।

हे भाई! श्रीराधिकाजी की श्रीचरणरेणु को तू अपने देह का भूषण कर, तब तो बिना किसी श्रम के तुम्हें श्रीगिरिधारी मिल जायेंगे। जो व्यक्ति श्रीराधा-चरण का आश्रय ग्रहण करता है, वास्तव में वही महत्-पुरुष है, मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ।।१०७।।

जय जय राधा-नाम, वृन्दावन जार धाम,
कृष्णसुख विलासेर-निधि।
हेन राधागुणगान, ना शुनिल मोर कान,
वञ्चित करिल मोरे विधि।।१०८।।

श्रीराधानाम की जय हो, जय हो। यह श्रीराधानाम वृन्दावन-विलासी श्रीकृष्ण के सुखविलास की निधि है। ऐसा श्रीराधानाम-गुणगान मैंने अपने कानों से नहीं सुना है, मुझे तो विधाता ने वञ्चित कर दिया है।।१०८।।

तार भक्तसंगे सदा, रसलीला प्रेम कथा,
जे करे से पाय घनश्याम।
इहाते विमुख जेई, तार कभु सिद्धि नाई,
ना शुनिये तार जेन नाम।।१०९।।

श्रीराधिका के भक्तों का जो सदा संग करता है, मधुर रस लीला की प्रेममयी कथा का जो श्रवण करता है, वह निश्चय ही श्रीघनश्याम को प्राप्त करता है। जो श्रीराधा से विमुख है, उसे तो कभी भजन में

सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती, वह प्रेम-भक्ति को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। उस व्यक्ति का तो नाम भी नहीं सुनना चाहिये।।१०६।।

कृष्णनाम गाने भाई, राधिका-चरण पाई,
राधानाम गाने कृष्णचन्द्र।
संक्षेपे कहिनु कथा, घुचाओ मनेर व्यथा,
दुःखमय अन्य कथा द्वन्द्व।।११०।।

श्रीकृष्णनाम गान करने से तो श्रीराधाचरण-सेवा की प्राप्ति होती है और श्रीराधानाम गान करने से श्रीकृष्णचरण की सेवा प्राप्त होती है। मैंने यह बात अति संक्षेप में कह दी है। अतः तुम इस सार-सिद्धान्त को समझो और श्रीराधानाम, श्रीकृष्णनाम गान करते हुए मन की समस्त व्यथा दूर करो और सब बातें तो दुःखमय हैं, झगड़े ही हैं।।११०।।

अहंकार अभिमान, असत-संग असत-ज्ञान,
छाड़ि भज गुरु-पादपद्म।
करि आत्म-निवेदन, देह-गेह परिजन,
गुरुवाक्य परम महत्त।।१११।।

अहंकार, अभिमान, असत्-संग तथा असत्-शास्त्रों का ज्ञान-इन सबको छोड़कर श्रीगुरुदेव के श्रीचरणकमलों का आश्रय कर। देह-गेह, परिजन के सहित श्रीगुरुदेव को तू आत्म-निवेदन कर। वे तुम्हें श्रीयुगलकिशोर की प्रेमभक्ति का उपदेश करेंगे, उस उपदेश की परम महिमा है।।१११।।

श्रीकृष्णचैतन्यदेव, रति-मति तारे सेव,
प्रेम-कल्पतरु-दाता।
ब्रजराजनन्दन, राधिकार प्राणधन,
अपरूप एह सब कथा।।११२।।

श्रीकृष्णचैतन्यदेव प्रेम दान में कल्पवृक्ष के समान उदार हैं। प्रीतिमयी बुद्धि से तुम उनके श्रीचरणों का सेवन कर। वही श्रीराधिका के प्राणधन ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण हैं। यह तत्त्व सिद्धान्त अति अनुपम है- परम रहस्यमय है।।११२।।

नवद्वीपे अवतरी, राधाभाव अंगीकारि,
भाव कान्ति अंगेर भूषण।
तिन वाञ्छा अभिलाषी, शची गर्भे परकाशी,
संगे सब पारिषद गण।।११३।।

ब्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण ने श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु रूप से नवद्वीप में अवतार ग्रहण किया है। उन्होंने श्रीराधा के भाव तथा कान्ति को अपने अंगों का भूषण किया है और कृष्ण से गौर हुए हैं। अपनी तीन वाञ्छाओं को पूर्ण करने की अभिलाष से वे श्रीशचीमाता के गर्भ से आविर्भूत हुए हैं। उनके साथ उनके समस्त पार्षदगण भी अवतीर्ण हुए हैं।।११३।।

गौरहरि अवतरि, प्रेमेर बादर करि,
साधिला मनेर निज काज।
राधिकार प्राणपति, कि-भावे कान्दये निति,
इहा बुझे भकत-समाज।।११४।।

श्रीगौरहरि (श्रीगौरांग महाप्रभु) ने अवतार लेकर प्रेम को तो मेघ बना दिया- प्रेम की सब स्थानों पर निर्विचार वर्षा कर दी है। इधर अपनी भी मनोभिलाषा को पूर्ण किया। श्रीराधिका-प्राणपति श्रीकृष्णचैतन्य रूप में नाम गान कर-करके कैसे प्रेम विभोर होकर क्रन्दन किये, यह तो गौरभक्त- वृन्द जानते हैं।।११४।।

गुपते साधिवे सिद्धि, साधन नवधा भक्ति,
प्रार्थना करिव दैन्ये सदा।

करि हरि-संकीर्त्तन, सदाई आनन्द मन,
कृष्ण बिना आर सब बाधा।।११५।।

गुप्त रूप से ही उस प्रेमभक्ति की सिद्धि प्राप्त करो, जिसका एकमात्र साधन है— 'नवधा-भक्ति'। इसके लिए दीनतापूर्वक सदा प्रार्थना करनी होगी। सदाँ आनन्दपूर्वक श्रीहरिनाम संकीर्त्तन करना चाहिये और श्रीकृष्ण के सम्बन्ध से हीन सब चेष्टाओं तथा साधनों को भजन में बाधा ही जानना चाहिए।।११५।।

संसार बाटुयारे, काम-फाँसे बान्धि मारे,
फुकार करह हरिदास।
करह भकत संग, प्रेमकथा रस-रंग,
तबे हय विपद-विनाश।।११६।।

संसार-अटवी में चलने वाले यात्रियों को काम-क्रोधादि छः डाकू कामनाओं की फाँसी डालकर मार रहे हैं। भक्तों का संग कर और ब्रजप्रेम-लीला-कथा के रस में निमग्न हो, तभी तेरी समस्त विपत्तियों का नाश होगा।।११६।।

स्त्री-पुत्र बान्धव जत, मरि जावे कत शत,
आपनारे हओ सावधान।
मुइ से विषय हत, ना भजिनु हरिपद,
मोर आर नाहि परित्राण।।११७।।

हे भाई! स्त्री-पुत्र, बन्धु-परिजन यह सब न जाने कितने मर चुके हैं और कितने मरेंगे। अतः तू सावधान हो जा। मैं तो विषयों में मारा गया हूँ और श्रीकृष्णचरण का भजन नहीं कर सका। मुझे तो और कोई उद्धार का उपाय नहीं दीखता।।११७।।

रामचन्द्र कविराज, सेइ संगे मोर काज,
तार संग बिना सब शून्य।

यदि जनम हय पुनः, तार संग हय जेन,
तबे हय नरोत्तम धन्य।।११८।।

मैं तो श्रीरामचन्द्र कविराज के संग को ही सदा चाहता हूँ, उससे ही मेरा सब काम बन जाएगा। उनके संग के बिना तो सब शून्य के समान है। वे कहते हैं यदि मेरा पुनः जन्म भी हो तो प्रभु मुझे उनका संग प्रदान करें। इससे मैं धन्य हो जाऊँगा– यह सब श्रीठाकुर महाशय की दैन्योक्ति है।।११८।।

आपन भजन कथा, ना कहिबे यथा तथा,
इहाते हईवे सावधान।
ना करिह केह रोष, ना लइह केह दोष,
प्रणमह भक्तेर चरणे।।११९।।

अन्त में श्रीठाकुर महाशय कहते हैं- हे साधकगण! सावधान। अपने भजन की बात हर एक के आगे मत प्रकाशित करो। किसी के प्रति क्रोध मत करो, किसी के दोष को मत देखो। सदा श्रीकृष्ण-भक्तों के श्रीचरणों में आदरपूर्वक प्रणाम करो। मैं तो भला-बुरा कुछ भी नहीं जानता।।११९।।

श्रीगौरांग प्रभु मोरे ये बलान वाणी।
ताहा बिना भाल-मन्द किछुई ना जानी।।
लोकनाथ प्रभुपद हृदये विलास।
'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' कहे नरोत्तमदास।।१२०।।

श्रीगौरांग महाप्रभु ने जो कुछ मुझसे कहलाया, वही मैंने कह डाला है। श्रीगुरुदेव श्रीलोकनाथ प्रभुपाद को हृदय में विराजमान करते हुए मैं (नरोत्तमदास) ने इस "प्रेमभक्तिचन्द्रिका" का गान किया है।।१२०।।

।। इति श्रीपाद नरोत्तमदास ठाकुर महाशय विरचिता
श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका समाप्त ।।

श्रीसद्गुरु शतक

श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज विरचित

भूमिका

श्रीश्रीराधागोविन्द देव की असीम अनुकम्पा से यह 'श्रीसद्गुरु शतक' नामक ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है। इसके रचयिता श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज हैं। आप ब्रजभाषा के एक विशिष्ट कवि हैं।

आपका जन्म १ जनवरी, सन् १९४४ को हुआ। आपने ब्रजभाषा में भक्तिपरक अनेक ग्रंथों की रचना की है। आपको श्रीकाशीप्रसाद श्रीवास्तव (केलि मंजरी) जैसे विद्वान् वैष्णव का सत्संग प्राप्त हुआ। गौड़ीय सम्प्रदाय के विख्यात संत श्रीश्रीराधा-रमणचरणदास बाबाजी महाराज की परम्परा में श्रीदीनहरिदास बाबाजी महाराज की शरणागति प्राप्त हुई।

आपने श्रीगुरुदेव की कृपा प्राप्त कर श्रीहरिनाम शतक, श्रीहरिलीला शतक, श्रीचैतन्यचरित मानस, श्रीनिताईगौर शतक, श्रीसीताराम शतक, श्रीकरणीचरित मानस, श्रीहरिनाम चालीसा, श्रीसद्गुरु चालीसा, सर्वशक्ति चालीसा इत्यादि ग्रंथों की रचना की।

इनको पढ़कर श्रीराधामाधव, श्रीनिताईगौर, श्रीगुरुवैष्णव के श्रीचरणारविन्द में निर्मल रति उत्पन्न होती है। इन ग्रंथों का व्यापक प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से इनका पुनः प्रकाशन किया जा रहा है और जनसाधारण को अति सरल, सहज, बोध गम्य अर्थ समझाने हेतु इसका हिन्दी अनुवाद भी दिया जा रहा है। इससे अधिकांश लोग लाभान्वित हो सकेंगे। श्रीगुरु पूर्णिमा महोत्सव (व्यास-पूजा तिथि) दिवस पर यह ग्रंथ महत्त्वपूर्णकारी सिद्ध होगा। इस दिन श्रीगुरुजी की पूजा करते हुए श्रीगुरु महिमा के पदों का गायन-वादन अवश्य करना चाहिये।

इस ग्रंथ में कोई भूल-त्रुटि होने पर भक्त, रसिकवृन्द क्षमा करें।

-लक्ष्मीनारायणदास

ग्रंथकार का संक्षिप्त जीवन परिचय

परिचय- गौड़ीय वैष्णव ब्रजभाषा कवि

नाम- श्रीनन्दकिशोर 'ब्रजदास'जी महाराज

जन्मकाल- १ जनवरी १९४४

जन्मस्थान- बौंली बिशनपुरा, सवाई माधोपुर, जयपुर (राजस्थान)

माता- श्रीमती सुखबाई

पिता- श्रीहिंगलाज दानसिंह (भूतपूर्व जागीरदार, जयपुर)

पितामह- ठा० श्रीईश्वरी दानसिंह

गुरुदेव- श्रील दीनहरिदास बाबाजी महाराज

ग्रंथ रचनायें- श्रीहरिनाम शतक, श्रीहरिलीला शतक, श्रीनिताईगौर शतक, श्रीचैतन्यचरित मानस, श्रीसीताराम शतक, श्रीकरणीचरित मानस, श्रीहरिनाम चालीसा, श्रीसद्गुरु चालीसा, सर्वशक्ति चालीसा इत्यादि।

रचनाकाल- सन् १९००-२००० पर्यन्त

सम्मान- (१) राजस्थान ब्रजभाषा अकादमी द्वारा जोधपुर में सम्मानित २४/१२/१९९५, (२) श्रीगौरांग महाप्रभु मन्दिर ट्रस्ट जयपुर द्वारा सम्मानित २३/११/१९९७

उपाधि- (१) 'साहित्य निधि' (भारतीय मन्दिर संस्था जयपुर द्वारा प्राप्त २३/१०/१९९३), (२) 'वाग्विभूषण' (अनुग्रह अकादमी जयपुर द्वारा प्राप्त १८/९/१९९९)

समाज सेवा- (१) सचिव श्रीकरणीकला संस्थान जयपुर, (२) सचिव संचालन समिति चारण छात्रावास जयपुर, (३) महा सचिव चारण सभा जयपुर

निवास- १३६, करणीकुंज, राधागोविन्द कॉलौनी, ढहरा का बालाजी (जयपुर-१२)

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
१.	वन्दौ गुरु पद मंगल धाम	८
२.	मंगल गुरु पद मंगल दर्शन	६
३.	धनि धनि श्रीगुरुवर गुन ग्रामा	६
४.	मंगल मूरति पूरण काम	१०
५.	गुरुवर जय जय 'दीनहरी'	१०
६.	विराजत श्रीगुरुवर ब्रजाधाम	११
७.	पायो गुरनाम गम्भीर	१२
८.	सबको निज गुरु लागें प्यारे	१३
६.	जग में सब गुरु एक समान	१३
१०.	गुरु तज का जो सुजस सुनाऊँ	१४
११.	मैंने सपने में गुरु पाये	१४
१२.	चलो रे सतगुरुजी के द्वार	१५
१३.	धरनो गुरु के द्वारे दीजै	१५
१४.	भजन पथ कोटि-कोटि व्यवधान	१६
१५.	नींके फल लागे अति नींके	१७
१६.	गुरु बिन सब साधन बेकार	१७
१७.	साधक जन के प्रान गुरुजी	१८
१८.	कीन्हीं सतगुरुनाथ सहाय	१६
१६.	गुरु की करूणा कही न जाय	१६
२०.	गुरु की करूणा अपरम्पार	२०
२१.	हमारे गुरुवर गुन की खान	२०
२२.	भज रे गुरु दाता गुनवान	२१
२३.	गुरुता उतर गई मोमन में	२२
२४.	मूढ तैने हरिरस नाहिं चख्यो	२२
२५.	मनवा और कछु नहीं चहिये	२३
२६.	जाते हरि गुरु को है जाऊँ	२४
२७.	कितने दिन और ठिकानो है	२४
२८.	गुरुवर बेगि सहारो दीजै	२५

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
२९.	गुरुवर मेरी ओर निहारो	२५
३०.	गुरुवर अपनो विरद विचारो	२६
३१.	गुरुवर अनुपम नेह तिहारो	२७
३२.	मेरी सुरत गुरु सौं लागी	२७
३३.	आयो जी मैं तो सतगुरु चरनन आयो	२८
३४.	हौं तो गुरुपद पावन गहिहौं	२९
३५.	हमारे आनन्द आठों याम	२९
३६.	जिनके हरिगुरु चरन पियारे	३०
३७.	मन रे लागि गुरु के चरना	३०
३८.	मन रे श्रीगुरु चरन पखार	३१
३९.	उर में गुरु पद पंकज धार	३१
४०.	गुरुवर निज चरनन रति दीजै	३२
४१.	रे मन गुरु चरनन रज लीजै	३३
४२.	भरोसो गुरुपद पावन को	३३
४३.	गुरुपद पंकज पावन भज रे	३४
४४.	गुरुपद प्रान्त सुहानो रहिये	३५
४५.	हरिगुरु वैष्णव चरण चाँपिये	३५
४६.	देखी बहुत अनोखी बात	३६
४७.	मनवा गुरु की मौज मनईये	३७
४८.	शकुन सब साँचे भये मेरी बीर	३७
४९.	गुरुवर मेरी कुँज पधारे	३८
५०.	जग में गुरु सानिध्य अमोघ	३९
५१.	लखे जब सतगुरु मरी ओर	३९
५२.	गुरु तुम आनन्द बहौत कर्‌यो	४०
५३.	मो धन गुरु चरनन की धूरी	४१
५४.	जग में जे गुरु मुख हो जावै	४१
५५.	रे मन गुरु वचनन रुचि लीजै	४२
५६.	बतियाँ जानत-जानत जानी	४२
५७.	गुरु की इक-इक बात खरी	४३

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
५८.	जा के शब्द बाण की लागी	४४
५९.	बलैंया दोनों हाथन लइये	४४
६०.	गुरु की पाहुँनियाँ सिर धरिये	४५
६१.	गुरु कर जाके सिर धर देत	४६
६२.	जा के घर में गुरु को बासा	४६
६३.	उर में आनि बसे गुरु मेरे	४७
६४.	मैं तो मगमन फिरं दिनराती	४७
६५.	अष्ट दोहवली-१ (गीधराज)	४८
६६.	गुरु को ऋणन चुकै कछु कीन्हे	४९
६७.	अष्ट दोहावली-२	५०
६८.	गुरुवर तुम्हारे भेद नहीं	५१
६९.	मेरे गुरु बाबा मुस्काये	५१
७०.	गुरुवर अति उपकार तुम्हारे	५२
७१.	गुरु बिन ऐसी कौन करै	५३
७२.	गुरु तुम हरि तैं अधिक कियो	५३
७३.	गुरु बिन का को काज सरयो	५४
७४.	गुरु बिन कैसे उतरै पार	५४
७५.	गुरु बिन जग अंधियारो छाय	५५
७६.	का दिन जियो गुरु के हेत	५६
७७.	गुरुवर इतनो नेह कियो	५७
७८.	गुरु ने जड़ता ही लीन्ही	५७
७९.	गुरु ने अन्तर के रिपु मारे	५८
८०.	गुरु ने दीनन के दिन फेरे	५९
८१.	दरश बिन नैनन ज्योत चली	५९
८२.	सुनियो गुरुदेव गरीबन की	६०
८३.	सुन रे लम्बी भुजाओं वारे	६०
८४.	गुरु को ध्यान करो रे भाई	६१
८५.	करिये श्रीगुरुपद को ध्यान	६२
८६.	गुरुवर करूणा रूप तिहारो	६२

क्रमांक	पद	पृष्ठ संख्या
८७.	गुरुवर साँची सीख तिहारी	६३
८८.	गुरु तुम साँचे मीत हमारे	६४
८९.	जाकी प्रीत गुरु संग नाहीं	६४
९०.	भक्ति भवन गुरुदेव दयामय	६५
९१.	जग में गुरु गरिमा अति भारी	६६
९२.	जगत में कोऊ न गुरु समान	६६
९३.	गोविन्द अति उदार गुरु मेरे	६७
९४.	जगत में गुरु सम कौन उदार	६८
९५.	मैं तो निर्मल होता जाऊँ	६८
९६.	चल रे गुरु सरिता के तीर	६९
९७.	जग में गुरु गंगा की धारा	६९
९८.	जिनके गुरु दाता गम्भीर	७०
९९.	बदरिया गुरु करूणा की छाई	७१
१००.	आली मोरी आज ही आखातीज	७१
१०१.	बरस रह्यो री रंग सतगुरु जी के द्वार	७२
१०२.	चतुर जन एहि विधि खेलत होरी	७३
१०३.	गुरुवर ऐसी मौज करी	७३
१०४.	गुरुवर गह लीन्हो सब भाँती	७४
१०५.	गुरुवर एक तुम्ही सौ आशा	७५
१०६.	आशा पुरवौ सतगुरु नाथ	७५
१०७.	आरती गुरु गोविन्द की करिये	७६
१०८.	श्रीमद् गुरु शोभित सब भाँती	७६

समर्पण

कहा गुरु को तत्त्व है, कहा शास्त्र को सार।
कहा सृजन अस कर सकूँ, मैं मतिहीन गँवार।।
मैं अतिदीन मलीन-मन, उर में सकल विकार।
ग्रंथ रचायो आपनै, करूणा करी अपार।।
आयो हूँ जयनगर ते, ग्रंथ शीश पै धार।
भाव-पुष्पे को पुंज है, श्रीगुरुदेव उदार।।
रसिकन राखनहार हो, प्रेमिन प्राणाधार।
सद्गुरु शतक स्वीकारियो, गुरुवर गुण आगार।।
'बिरजदास' के प्राणधन, श्रीगुरुवर दातार।
शतक समर्पित आपकूँ, कर लीजौ स्वीकार।।

पद (१)

वंदौ गुरुपद मंगलधाम।
सकल मनोरथ पूरनहारे, सब विधि पूरण काम।।
ठाड़ी रहैं सिद्धियाँ सारी, कर जोरे अविराम।
गुरु चरनन में सकल सम्पदा, अटी रहैं सब ठाम।।
वेद-पुरान-देव-दानव सब, गावत गुन अविराम।
गुरु प्रताप तिहुँ लोकन छायो, पूजत सब जग पाम।।
अंग-अंग हरि-रंग समायो, नख-शिख लौं अभिराम।
चिदानन्दमय देह गुरु की, सत् चित् आनन्दधाम।।
जिनके एक बार परसत ही, पावत मन विश्राम।
'बिरजदास' उन गुरु चरनन में, शत-शत बार प्रणाम।।

श्रीगुरुदेव के चरणकमलों में प्रणाम कर रहा हूँ। ये सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। श्रील गुरुदेव के सम्मुख सम्पूर्ण सिद्धियाँ हाथ-जोड़कर खड़ी रहती हैं। वेद-पुराण सभी गुरु-तत्त्व की महिमा का वर्णन करते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं-

"मैं गुरुदेव के श्रीचरणों में शत-शत बार प्रणाम करता हूँ। यही मेरे मन को परम विश्राम प्रदान करेंगे।"

पद (२)

मंगल गुरुपद दर्शन मंगल।
मंगल बदन, बसन सब मंगल, तुलसीदल आभूषण मंगल।।
मंगल गमन, आगमन मंगल, मंगल ठौर विराजन मंगल।
मंगल चलन, फिरन सब मंगल, चरनन को आकर्षन मंगल।।
मंगल चन्दन, वन्दन मंगल, मंगल अर्चन-पूजन मंगल।
मंगल भजन, सुमंगल सुमिरन, मंगलमन आनँदघन मंगल।।
मंगल अरसन, परसन मंगल, गुरुवर को सिगरो तन मंगल।
वास करत जित, अनधन मंगल, मंगल वन अरू उपवन मंगल।।
मंगल आन्हिक, आसन मंगल, मंगल साधक, साधनमंगल।
श्रीगुरु चरनन, निकट बैठकर, 'बिरजदास' आराधन मंगल।।

श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों का दर्शन परम मंगलकारी है। उनके मुख, वस्त्र, तुलसी, काष्ठ-आभूषण सब मंगलमय हैं। इनका भजन, सुमिरन, ध्यान, चिन्तन मंगलमय है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रील गुरुदेव के चरण सान्निध्य पाकर मेरा जीवन भी मंगलमय हो गया है।"

पद (३)

धनि-धनि श्रीगुरुवर गुनग्रामा।
धनि-धनि मंगलरूप सकल विधि, धनि-धनि पूरण कामा।।
धनि-धनि भौंहें श्रीमुख धनि-धनि, धनि लोचन अभिराम।
धनि कपोल, ग्रीवा सुडोल, सरस बोल सुख धामा।।
धनि कन्था कोपीनहु धनि धनि, धनि धनि डोर सुकामा।
बहिर्वास अधिवासहु धनि धनि, धनि करूआ अभिरामा।।
धनि सुमिरन धनि, धनि धनि चिन्तन, धनि श्रीश्याम रू श्यामा।
धनि जिव्हा को अटल सिंहासन, धनि धनि धनि हरिनामा।।
धनि अजानुबाहू नरनाहर, धनि निश्छल-निस्कामा।

'बिरजदास' धनि धनि पदपंकज, धनि धनि मंगल धामा।।

मैं श्रील गुरुदेव का गुणगान कर धन्य-धन्य हो गया हूँ। श्रीगुरुदेव सर्व विधि मंगलमय हैं, उनका मुखमण्डल, कपोल व मिष्ट वाणी अत्यन्त मंगलमय है। उनका प्रत्येक अंग ही मंगलमय है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के पदपंकज दर्शन कर मैं धन्य हो गया हूँ।"

पद (४)

मंगल मूरति, पूरण काम, जय जय गुरुवर, जय गुन धाम,
भाल तिलक, कण्ठी अतिप्यारी, पीत वसन की, छवि नियारी,
गल-माला, सोहे-अविराम।।१।।
दिव्य कपाल, दमक द्युति कैसो, मुण्डित शीश, सुमेरू जैसो,
भव्य ललाट, सुघड़ सुखधाम।।२।।
दनुज-मनुज-सुर, शीश नवावैं, वेद-पुरान-श्रुति, गुन गावैं,
अगुन-सगुन, द्वै रूप ललाम।।३।।
वर मुद्रा अपने, कर साजो, अष्टकमलदल, आप बिराजो,
कृपा-अहेतु, करत अनाम।।४।।
सकल मनोरथ, पूरनहारे, दासन के, साँचे रखवारे,
चन्द्रबदन, दर्शन अभिराम।।५।।
अपनी चरन, शरन लै-लीजै, 'बिरजदास' पै, करूणा कीजै,
उर उजियारे, आनँद धाम।।६।।

श्रीगुरुदेव मंगलमय हैं, उनके मस्तक पर ऊर्ध्वपुण्ड तिलक व कण्ठ में तुलसीमाला विराजमान है। वेद-पुराण गुरुरूपी हरि की महिमा का निरन्तर गुणगान कर रहे हैं। श्रील गुरुदेव बिना हेतु के ही कृपा करते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु कृपा से मेरे हृदय में उज्ज्वलता का आनन्द प्राप्त हो रहा है।"

पद (५)

गुरुवर जय-जय 'दीनहरी'।
करूण सन्त मो उर पै डारो, दृष्टि नेहभरी।।

धीर-बीर-गम्भीर अनोखे, मुस्कन अधर धरी।
गद्गद् गिरा पुलक तन सोहे, बतियाँ मोद भरी।।
सकल जगत ही लगत आपनो, करूणा जात ढरी।
सदा रहत निर्बैर भाव में, एकहु नाहिं अरि।।
अभय भयो बो जीव जगत में, यम की चोट टरी।
करूणा करके अरूण हथेरी, जोके सीस धरी।।
भजन पन्थ व्यवधान मिटाये, सिगरी विपदहरी।
मो जैसे हरि-विमुख जीव पै, करूणा बहौत करी।।
चल रे मन वृन्दावन चल रे, जे चाहत सुधरी।
'बिरजदास' मम गुरु के द्वारे, आनँद आठ घरी।।

परम पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय दीक्षा गुरुदेव श्रीश्री१०८श्रील दीनहरिदास बाबाजी महाराज की जय-जयकार हो। ऐसे पूज्यपाद गुरुदेव ने करूणा भरी दृष्टि से मुझे निहारा है। उनके गद्गद् कण्ठ और सुमधुर वाणी सुनकर हृदय द्रवित हो जाता है। सम्पूर्ण जगत अपना-सा लगता है। सदा निर्वेद भाव से रहते हैं। जिस पर गुरुदेव ने कृपा कर दी, उसकी सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश हो गया। ब्रजदासजी कहते हैं- "अरे मन! तू वृन्दावन धाम में श्रीगुरुदेव के द्वारे पर चल।"

पद (६)

बिराजत श्रीगुरुवर ब्रजधाम।
स्वयं लेत अरु सबन लिवावत, ठाकुरजी को नाम।।
मुनि-शान्त-निर्पेक्ष जगत सौं, नहीं बैर को नाम।
काहू सौं कछु चाहत नाहीं, सदा रहत निष्काम।।
ललित लवंग लतन में बैठे, दरश करें अभिराम।
झुंड-झुंड सखियन में राधा, कुँज-कुँज में स्याम।।
कित गोपी कित ग्वाल गऊ कित, कित राधे को नाम।
तीन लोक में नाँय मिलैगो, नन्दगाम सो गाम।।
नाम-कर्म-गुन-रूप हरि के, गावत आठों याम।

धर्मनिष्ठ गुरुदेव हमारे, सब विधि पूरण काम।।
सदा रहत लीला चिन्तन में, रस लेवत अविराम।
यमुन पुलिन पै राधा दीखै, गोवरधन पै स्याम।।
कृपा रूप करूणा के सागर, नित आनँद के धाम।
'बिरजदास' गुरुदेव चरन में, शत-शत बार प्रणाम।।

श्रील गुरुदेव सदा ब्रजधाम में विराजते हैं। स्वयं ठाकुरजी का मंगलमय नाम जपते हैं और दूसरों को भी प्रेरित करते हैं। सर्वदा शान्त और निष्काम उनका दिव्य गुण है। श्रीहरिनाम रूप गुण लीला का निरन्तर ध्यान करते हैं। श्रीराधामाधव की अष्टकाल लीला के चिन्तन में मग्न रहते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रील गुरुदेव के श्रीचरणों में शत-शत बार प्रणाम कर रहा हूँ।"

पद (७)

पायो गुरुनाम गम्भीर।
सकल ताप-अनुताप मिटाये, मिटि त्रिविध की पीर।।
श्रवनन ते नाभी में उतरयो, रोम-रोम गयो बीर।
सकल भाँति अपनो कर लीन्हों, दीन्हो आपा चीर।।
जनम-जनम के बन्धन काटै, कटी कर्म-जंजीर।
दोऊ लोक सुधारे छिन में, हटी दुःखन की भीर।।
कब लौं सघन बन्यो ही रहतो, कबलौं देतो पीर।
दावानल-गुरुनाम ते अघ-वन, जर के रहयो अरवीर।।
ज्वार बढ्यो भव के सागर में, बढ़ि बढ़ि आयो नीर।
'बिरजदास' गुरु नाम कृपा ते, कबहुन भयो अधीर।।

मैंने तो परम गम्भीर गुरुनाम को पा लिया है। जब से गुरुनाम जपा हूँ, तब से समस्त पाप मिट गये हैं और जन्म-जन्म के बन्धन कट गये हैं, मेरे लोक-परलोक सुधर गये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु नाव की कृपा से अब कभी अधीर नहीं रहता हूँ।"

पद (८)

सब को निज गुरु लागैं प्यारे।
काहू ते कछु होड़ नहीं है, का गोरे का कारे।।
चंचल चपल चतुर या भोरे, निबल-सबल चितवारे।
भले-बुरे कैसेहू होवें, लागत प्राण पियारे।।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश सकल सुर, सनकादिक उजियारे।
अपने गुरु में सबहि समाये, जगत गुरु जन सारे।।
और गुरून की करूणा पाके, सुख उपजैगो हाँरे।
पै निज गुरु कृपा बिन साँचो, हित न होयगो प्यारे।।
चाहे जितते अईयो साधक, चाहे जित को जारे।
अपने गुरु को ध्यान न तजियो, 'बिरजदास' मतवारे।।

सभी को अपने गुरुदेव अतिप्रिय लगते हैं। ब्रह्म-विष्णु-महेश का दर्शन शिष्य अपने गुरुदेव में करता है। गुरु की करूणा को पाकर ही शिष्य सुखी होता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "क्षणमात्र भी गुरु चरणों का विस्मरण मत करो।"

पद (९)

जग में सब गुरु एक समान।
को छोटो अरू कौन बड़ो है, का सौं होत निदान।।
मत-मतान्त के झगरे तजिकै, रस पै धरिये ध्यान।
सकल गुरुन में तत्त्व एक है, रे मन लीजो जान।।
लग रे साधक सावधान हो, तजि माया-अभिमान।
एक ही है उपदेश सबन को, भज रे भज भगवान।।
रूप भिन्न रस-रंग भिन्न है, तद्दपि तत्त्व समान।
ज्यों पोखर-सागर जल इकसा, त्यों गुरु को ले मान।।
ज्यों पुष्पन में सौरभ बसता, चन्दन गन्ध प्रमान।
त्यों 'ब्रजदास' बसत गुरु घट में, काया माटी जान।।

उनमें छोटे-बड़े का भेद करना बड़ा भयंकर अपराध है। मत-मतान्तर के झगड़े को त्यागकर सत्य पर ध्यान देना

चाहिये; कि सर्व गुरुओं में एक ही तत्त्व विराजमान है। यह बात समझनी चाहिये। सभी पुष्पों में सौरभ है, सभी चन्दन में गन्ध है; इसी प्रकार सभी गुरुदेव में भगवत्-तत्त्व विराजमान हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "जगत के सर्व गुरुओं को प्रणाम कर भगवद् भजन करना चाहिये।"

पद (१०)

गुरु तज का को सुजस सुनाऊँ।
का को बिरद गुरु ते ऊँचो, जा को जा बिरदाऊँ।।
कौन करन में निज कर सौंपू, कौन घरन पे जाऊँ।
कौन शरन हाथन कूँ जोरूं, कौन चरन सिर नाऊँ।।
ऐसी डार, पता कित ऐसे, कित ऐसे फल पाऊँ।
तीन लोक में गुरु द्रुम जैसो, कल्प वृक्ष कित लाऊँ।।
काहे परूँ कोऊ ताल-तलैया, काहे तल में जाऊँ।
गुरु-सागर के मोती तज के, कयों कंकर कर लाऊँ।।
मलियागिरि की खोह छाँड़िके, कौन कोह पे जाऊँ।
'बिरजदास' गंगाजल तज के, का पोखर में न्हाऊँ।।

गुरुजी को तजकर किसका सुयश बखान करूँ? किसका विरद गुरु से ऊँचा है? तीनों लोकों में गुरु जैसा तरु कहाँ है? मैं क्यों ताल-तलैया में पडूँ? जब गुरु जैसे समुद्र को पा लिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मलियागिरि चन्दन को छोड़कर अब मैं किसके पास जाऊँ?"

पद (११)

मैंने सपने में गुरु पाये।
बाँह पकरि बैठार्‌यो चरनन, आशिर्वचन सुनाये।।
कर-सरोज माथे पे मेल्यो, नाना लाड़ लड़ाये।
करूणा दृष्टि डार हिया पै, मन्द-मन्द मुस्काये।।
कण्ठी बाँध तिलक दै दीन्हो, श्रवनन मंत्र सुनाये।
कृपा-वारि बरसायो ऐसो, नख शिख आनँद छाये।।

सार तत्त्व को बोध करायो, हित अनहित समझाये।
शंका नाश करी मेरे सतगुरु, सारे भरम मिटाये।।
कहा कहूँ करूणा है कैसी, कोटिन कलुष जराये।
'बिरजदास' हरिपद पा लीन्हो, महिमा कही न जाये।।

मैंने स्वप्न में श्रीगुरुदेव के दर्शन किये। वहाँ मुझे अपने श्रीचरणों में बैठाकर आशीर्वचन सुनाये। अपना कर-कमल मेरे मस्तक पर रखा व तिलक कण्ठी धारण कराये और दीक्षा-मंत्र सुनाया। मुझे सार-तत्त का बोध समझाया। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरुदेव की महिमा तो अवर्णनीय है।"

पद (१२)

चलो रे सतगुरु जी के द्वार।
जिनके द्वार देव सब ठाड़े, आनँद होत अपार।।
कित प्रयाग पुष्कर कित राजै, कित काशी हरिद्वार।
गुरु चरनन में सारे तीरथ, बैठे बाँह पसार।।
यम-कुबेर अरू वरुण देव से, चाकर खड़े हजार।
पवनदेव झारू काढ़त हैं, सुर गावत मल्हार।।
सुर-नर-नाग-यक्ष अरू किन्नर, चारनदेव उदार।
राजा-जोगी-पीर-औलिया, सेवा करत सँभार।।
का 'ब्रजदास' परयो आलस में, छिन-छिन होत बिगार।
करत प्रमाद कुटिल बिन कारन, रे मन मूढ़ गँवार।।

अरे मन! श्रीगुरुदेव के द्वार पर चलो; जिनके द्वार पर समस्त देव खड़े हुए हैं। श्रील गुरुदेव के चरणकमल में ही सम्पूर्ण तीर्थ विद्यमान हैं। फिर अन्य तीर्थ में जाने की क्या आवश्यकता है? ब्रजदासजी कहते हैं- "क्यों आलस्य में समय को नष्ट कर रहा है? श्रील गुरुदेव की सेवा कर।"

पद (१३)

धरनो गुरु के द्वारे दीजै।
जबलौं निज कर नहिं उठावैं, तब लौं नाहिं उठीजै।।

कृपा मांगि पुनि करूणा मांगो, रुचिकर विनती कीजै।
जा ते चरनन में बैठा लैं, ऐसी मांग करीजै।।
अड़े रहो कुटिया के आगे, उलटो मुख नहीं कीजै।
गह लीन्हें फिर तजनो कैसो, पुनि-पुनि पग पकरीजै।।
जित-जित गमन करत हैं स्वामी, तित-तित ध्यान धरीजै।
गुरु के अमिट चरण चिन्हन पै, अपनो सिर धर दीजै।।
डटे रहो 'ब्रजदास' भाव सौं, कबहू पीठ न कीजै।
जब लौं मिलहिं न चरण-पादुका, तब लौं नाहिं हटीजै।।

अब तो हम श्रीगुरुजी के द्वार पर ही पड़े रहेंगे। जब तक वे अपने कर-कमलों से हमें नहीं उठायेंगे; तब तक हम उठेंगे नहीं। उनकी कृपा ही हम माँगते हैं, कुटीर के आगे पड़े रहेंगे और लौटेंगे नहीं। गुरुदेव के पतित पावन चरणकमल अपने मस्तक पर रखेंगे। ब्रजदासजी कहते हैं- "जब तक चरणों की पादुका हमें नहीं प्राप्त होगी; तब तक जायेंगे नहीं।"

पद (१४)

भजन-पथ कोटि-कोटि व्यवधान।
कौन गुरु के चरनन लागै, कौन भजै भगवान्।।
सब को मान-बड़ाई चहिये, कौन चहै अपमान।
कासौं माया मोह छुटिजै, कौन तजै अभिमान।।
कौन तजै कुल की मर्यादा, कौन वर्ण को ध्यान।
कासौं देह-गेह-सुधि छूटै, कासौं बिसरै मान।।
पाँव पकर कर परिजन खींचैं, मीत पकर के कान।
हाथ पकर कर दारा खींचै, सुत खींचत हैं ध्यान।।
काम-क्रोध-मद-लोभ खड़े हैं, ताने कुटिल कमान।
सबल सिद्धियाँ मारग रोकैं, किस विध करें पयान।।
इहिं मारग कोई सूरा आवै, तजि के सकल जहान।
'बिरजदास' गुरु चरन आसरो, राखै अटल सुजान।।

भजन पथ में करोड़ों-करोड़ों विघ्न आते हैं। सबको

मान-सम्मान चाहिये अपमान कोई चाहता नहीं है। गृह-परिवार की आसक्ति को त्यागकर कौन भगवद्-भजन के लिये निकलता है? काम-क्रोध-मोह-लोभ-मद-मत्सर सामने खड़े हुये हैं। साधक की भजन उन्नति होने पर सिद्धियाँ भी आ जाती हैं- ये भी विघ्न है। ब्रजदासजी कहते हैं- "इसप्रकार से देखा जाये साधन-मार्ग में भेद प्रकार के विघ्न आते रहते हैं। कोई विरला ही ऐसा वीर-बाँकुरा ही इस मार्ग में आ पाता है, जो श्रीगुरुदेव के चरणाश्रय में रहकर श्रीहरि भजन करता है।"

पद (१५)

नींके फल लागे अति नींके।
भजन-बीज मेरे सतगुरु दीन्हों, करूणा तरू के नींचे।।
नाम-बेल मन-खेत उगाई, अँसुवन के जल सींचे।
नैन खोल गुरु आगे बैठयो, जगत ओर ते मींचे।।
मन-मयूर अब नाँचन लाग्यो, गुन गावत है पी के।
प्रेम-लता उर में लहराई, फूल खिले भगती के।।
दौरि-दौरि गुरु चरनन जाऊँ, सदा रहूँ री हींके।
अशगुन-शगुन दोऊ तजि डारे, कहा होत है छींके।।
'बिरजदास' का के ढिंग जईये, सकल साथ हैं फीके।
सद्गुरुजी की संग चाह में, संग तजे सब ही के।।

अच्छे फल अत्यन्त प्रिय लगते हैं। गुरुदेव ने भजन बीज रोपण किया है। करूणारूपी वृक्ष की नीचे नाम-बेल मनरूपी खेत में उगी है। मैंने तो अब सगुन-असगुन दोनों को त्याग दिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब मैं किसके द्वार पर जाऊँ? मैंने सभी प्रकार के संग त्याग दिये हैं।"

पद (१६)

गुरु बिन सब साधन बेकार।
काया छीजै, राम न रीझै, पचि पचि मरे गँवार।।
अपने बल थकि थकि सब हारे, रजकन भये पहार।

भुजबल साधक सदा तुच्छ है, गुरुबल अपरम्पार।।
देह बिना देही कित बसि है, सुत बिन कित संसार।
गेह बिना के गिरही कैसो, नेह बिना ब्योहार।।
कहा काम देगी सागर में, कर बिन की पतवार।
बिन खेवैया नैया कैसी, डूबेगी मझधार।।
'बिरजदास' बाधा अति भारी, कबहू न पावै पार।
गुरु बिन गुरुतर काज न होवै, सब जग जावै हार।।

गुरुदेव के बिना समस्त साधन निस्तेज हैं। क्या वस्तु अपने साथ जायेगी? गुरुदेव की कृपा का बल अपरम्पार है। जैसे प्रेम के बिना व्यवहार नहीं होता है, ऐसे ही श्रील गुरुदेव के बिना भगवद् प्राप्ति नहीं होती है। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु के बिना कोई कार्य नहीं होगा।"

पद (१७)

साधकजन के प्रान गुरुजी।
ध्याता ध्येय धनी सै लागैं, निर्मल मन के ध्यान गुरुजी।।
नित-नित नव-नव रूप धरावैं, हित करूणा की खान गुरुजी।
निजजन लाज रखावन बारे, परिकर कुल की कान गुरुजी।।
दासन हित या जग में आये, तम नाशन को ज्ञान गुरुजी।
पतित जनन कूँ तारन काजे, श्रीहरि को अवदान गुरुजी।।
अपने नैन विभु कर प्यारे, कण-कण में ले जान गुरुजी।
कौन जगहा गुरु के बिन दीखै, तत्त्व रूप सब थान गुरुजी।।
का 'ब्रजदास' कहूँ मुख छोटो, तीरथ-वेद-पुरान गुरुजी।
कौन सरूप बतावै गुरु को, भक्ति-भक्त-भगवान गुरुजी।।

पूज्यपाद गुरुदेव साधकों के प्राण होते हैं। वे नव-नव रूप में आकर करूणा वर्षित करते हैं, दीनों की लाज रखने वाले हैं, तम का नाश कर ज्ञान प्रदान करने वाले हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु के बिना तत्त्व ज्ञान नहीं हो सकता है। वेद-पुराण-तीर्थ-व्रत सब गुरुदेव में विद्यमान हैं।"

पद (१८)

कीन्हीं सतगुरुनाथ सहाय।
केश पकरि काढयो भव जलते, बूढ़त लियो बचाय।।
जगत-वृक्ष के लग्यो जीव-फल, डार-डार लटकाय।
गिर्‌यो चहत नींचे ता पहले, सतगुरु लियो उठाय।।
पाप-गिरि ते ढका लग्यो जब, नीचे कूँ ढरकाय।
सतगुरुदेव आसरो दीन्हों, बीचहि लियो बचाय।।
पल-पल करी सँभार जीव की, छिन-छिन करी सहाय।
कर्मन-ब्याल डस्यो चाहत हो, गरुड़ बने गुरु आय।।
कहा कहूँ सतगुरु की करूणा, मुख सौं कही न जाय।
'बिरजदास' दुस्तर भवसागर, छिन में दियो सुखाय।।

श्रील गुरुदेव ने सब प्रकार से हमारी सहायता ही की है। हमें कैसे भवसागर से डूबने से बचा लिया; नहीं तो जगत में गिर पड़ता। कर्मरूपी ब्याल डसना चाहता है; किन्तु गुरुदेव हमारे जीवन में गरुड़ बनकर आ गये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरुदेव की करूणा मुख से वर्णन करना असम्भव है।"

पद (१९)

गुरु की करूणा कही न जाय।
मग कण्टक सारे चुन लीन्हें, दीन्हे पुष्प बिछाय।।
एक बार जाकूँ गह लीन्हों, सपनेहु ना बिसराय।
कोटि जनम की बिगरी आली, छिन में देत बनाय।।
शत-शत मात-पिता को नेहा, अपने माहिं रखाय।
गुरुवर अति करूणा के सागर, कृपा-मेह बरसाय।।
स्वारथ-पथ तजि देत छिनक में, उर आनन्द समाय।
गुरुदेव ते जा दिन लाग्यो, परमारथ-पथ जाय।।
जनम-जनम के बन्धन काटत, जग सौं लेत छुटाय।
'बिरजदास' गुरु पद बलिहारी, हरि सौं देत मिलाय।।

श्रीगुरुदेव की करूणा कही नहीं जा सकती। मार्ग के

समस्त कण्टक हटाकर पुष्प बना दिये हैं। कोटि जन्मों की बिगड़ी को क्षण में ही सुधार दिया है। वे शत-शत माता-पिता के समान प्रेम करते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु चरणों की बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने मुझे हरि सेवा सुख प्रदान किया है।"

पद (२०)

गुरु की करूणा अपरम्पार।
शत-शत मात-पिता को हिरदय, राखत निज उर धार।।
भुक्ति-मुक्ति आधीन गुरु के, सिद्धिन के अम्बार।
धर्म-अर्थ अरु काम-मोक्ष सब, देवत गुरु दातार।।
अपनो जन बिसरावत नाहीं, राखत कृपा अपार।
सूक्ष्म रूप ते संग रहत हैं, छिन-छिन करत सँभार।।
देव थके वेदादिक थाके, थाक्यो सब संसार।
गुरु को तत्त्व अमोघ जगत में, कोऊ न पावत पार।।
कापै सधै साधना टेढ़ी, कठिन भजन-आचार।
'बिरजदास' या भीषण युग में, गुरु करूणा ही सार।।

परम पूज्य गुरुदेव की करूणा अपरम्पार है। शत-शत माता-पिता के हृदय के समान प्रेम वे अपने हृदय में रखते हैं। भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि का तो अम्बार लगा देते हैं। वेद और देव गुरु-तत्त्व की महिमा को गा-गाकर थक जाते हैं; फिर भी कोई उनका पार नहीं पा सकता? ब्रजदासजी कहते हैं- "इस भीषण कराल युग में भी गुरुदेव करूणा ही एकमात्र सार है।"

पद (२१)

हमारे गुरुवर गुन की खान।
सकल भाँति आनँद के सागर, सब विधि कृपानिधान।।
कैसो करूण हृदय गुरुवर को, कैसो सुखद विधान।
छिनहू दूर हटावत नाहीं, दासन पे सौं ध्यान।।
जा नहीं सकै टेक काहू दिन, घट न सकै सम्मान।

सदा-सदा ते रखते आये, अपने जन की आन।।
सब जग में दातार कहावत, करत अभय पद दान।
होटन पै मुस्कान बिराजत, मंगलमय परिधान।।
का को बस सामर्थ्य कौन की, कौन घटावै मान।
'बिरजदास' मेरी भीड़ चढ़े हैं, श्रीगुरुदेव महान।।

हमारे गुरुजी गुणों की खान हैं। सभी भांति से आनन्द के सागर व कृपा निधान हैं। एकक्षण भी वह दूर रहते नहीं सदा सर्वदा सेवक पर ही ध्यान देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "किसकी सामर्थ्य है जो गुरु महिमा का वर्णन कर सके?"

पद (२२)

भज रे गुरु दाता गुनवान।
धर रे मधुर छवि उर माहीं, कर रे छिन-छिन ध्यान।।
उन्नत भाल, ऊजरे नैना, उर आनन्द महान।
कर-सरोज में माला सोहत, अधरन पै मुस्कान।।
मो मन गयो मयूर गतिपै, नाँचत दै-दै तान।
सुनि-सुनि बैन रसीले आली, श्रवन भये रसखान।।
हृदय कमल में गुरु बिराजत, सकल गुनन की खान।
तजि प्रपंच मेरे मन कर रे, चरन कमल को ध्यान।।
अन देवत, धन देवत कोई, देत मान-सम्मान।
गुरु दाता दातार अनोखे, देत प्रेम को दान।।
वाणी थकित भई मोरी सजनी, का मुख करूँ बखान।
'बिरजदास' जे जन ने पाये, सतगुरु संत सुजान।।

हे मन! तुम दयालु दाता गुरुदेव का भजन करो। उनकी मधुर छवि को अपने हृदय में धारण करते रहो। उज्ज्वल नैना हैं, कर-कमल में हरिनाम की माला है, अधर पर मंद हास्य है- यह छवि देखकर मेरा मन नृत्य करने लग जाता है। कोई धन, कोई मान, कोई वस्तु दे सकता है; किन्तु गुरुदेव तो साक्षात् भगवद् प्रेम को ही दान कर देते हैं। ब्रजदासजी कहते

हैं- "श्रील गुरुदेव को पाकर मैं तो धन्य हो गया हूँ।"

पद (२३)

गुरुता उतर गयी मो मन में।
गुरतर भाव गुरुवर दीन्हो, सुख कीन्हो साधन में।।
मृदु मुस्कान बिराजी अधरन, अब न रहयो क्रन्दन में।
जग-बन्धन ते आय छुड़ायो, बांध्यो हित-बन्धन में।।
तन लाग्यो सेवा में मेरो, मन लाग्यो सुमिरन में।
जीह-सिंहासन नाम बिराज्यो, शोभित है आनन में।।
सकल ठौर गुरु तत्त्व समायो, जल-थल-वन-उपवन में।
छिन-छिन माहीं करूणा भासत, कृपा लखत कन-कन में।।
का 'ब्रजदास' कृपा की कहिये, आत नहीं वर्णन में।
ब्रह्म सम्बन्ध दया करि दीन्हों, ले लीन्हों चरनन में।।

मेरे मन में गुरुदेव की कृपा वर्षित हो रही है। उन्होंने हरिनाम प्रदान कर जगत के बन्धन छुड़वा दिये हैं। अब तो सदा सर्वदा नाम सुमिरन में ही लगा रहता हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "उनकी कृपा की क्या कहें? उन्होंने अपने पावन श्रीचरणों में स्थान प्रदान कर दिया है।"

पद (२४)

मूढ़ तैंने हरिरस नाहिं चख्यो।
गुरु के चरन कमल नहीं चाँपे, सेवा नाहिं छक्यो।।
गुरु उपदेश सुने नहीं रूचि के, श्रवनन हाथ ढक्यो।
तर्क-वितर्क न उरझि मूढ़मति, बिरथा बात बक्यो।।
दृष्टि दोष मिटायो नाहीं, बिन अधिकार तक्यो।
साँचे जन ते द्रोह रखायो, झूठे हाथ बिक्यो।।
आगम-निगम मान नहीं कीन्हों, अटपट जाय भख्यो।
महत पुरुष के महत वचन को, नैंक न ध्यान रख्यो।।
सतगुरु सीख हिये नहीं लागी, कोमल हो न सक्यो।
गमनागमन पतन-पथ तेरो, अजहूँ नाहिं रुक्यो।।

कहाँ करूँ कैसे समझाऊँ, इत-उत जाय लुक्यो।
'बिरजदास' हरिदास छाँड़ि के, कुटिलन संग दिख्यो।।

हे मूर्ख मन! तैंने हरि रस को नहीं चखा है, गुरुचरण सेवा नहीं की है, गुरु उपदेश को धारण नहीं किया है; बल्कि तर्क-वितर्क में उलझकर जीवन व्यतीत किया है, दोष दृष्टि मिटाई नहीं है, सत्पुरुषों के वचनों में किञ्चित् भी ध्यान नहीं दिया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "अरे मन! मैं तुझे किस प्रकार समझाऊँ? तैंने तो सदा हरिदासों को छोड़कर कुटिलों का ही संग किया है।"

पद (२५)

मनवा और कछु नहीं चईये।
जाते मेरे सतगुरु रीझें, ऐसो जतन करईये।।
फूल भरे मारग तुम राखो, मोको तनिक न चईये।
जापै चलि गुरु करूणा पाऊँ, ऐसो पंथ सुझईये।।
नहीं चईये कछु और सिखावन, समुझावन नहीं चईये।
जाके सीखे गुरुवर रीझैं, ऐसी सीख सिखईये।।
दोनों ही के सुख हो जावै, डर आनन्द समईये।
मैं बिसार बैठूँ या जग कूँ, जग मोहे बिसरईये।।
काहे इत-उत डोले मितवा, काहे समय गँवईये।
'बिरजदास' तजि सकल बीथियाँ, गुरु गलियन में जईये।।

हे मन! तुझे और क्या चाहिये? जिस कार्य से गुरुदेव कृपा करते हैं वही चेष्टा करने का प्रयास कर। अपनी चेष्टाओं से श्रीगुरुदेव की करूणा प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

ब्रजदासजी कहते हैं- "सकल पंथों को छोड़कर एकमात्र गुरु की गली में ही जाना चाहिये; इधर-उधर डोलकर व्यर्थ समय नष्ट मत कीजिये।"

पद (२६)

जाते हरि गुरु को है जाऊँ।
मेरे मन कछु ऐसी कर रे, मोह नींद तज पाऊँ।।
जग सौं विमुख हरि सौं सम्मुख, गुरु सौं नेह लगाऊँ।
देह गेह अरू जगत-नेह की, सिगरी सुधि बिसराऊँ।।
कौन को मात-पिता-सुत-बन्धू, कौन को पूत कहाऊँ।
सकल विधि ते रहूँ अकेलो, चाहे जित कूँ जाऊँ।।
अटपट बैन अनोखी भाषा, अद्‌भुत रूप बनाऊँ।
बाहर ते मैं दिखूँ बावरो, भीतर सजग रहाऊँ।।
'बिरजदास' स्वामीपन तजके, दासपनो अपनाऊँ।
गुरुदासन के भी दासन में, अपनो नाम लिखाऊँ।।

अब तो मैं श्रीहरि और गुरुदेव का ही होऊँगा। मोह, निद्रा को त्याग दूँगा केवल श्रीगुरुदेव के चरणकमल में ही मन को लगाऊँगा। एकान्त वास कर श्रील गुरुदेव के मनोहारी छवि का ध्यान करूँगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "स्वामीपन का मिथ्या अभिमान त्यागकर दासभाव को हृदय में धारण करूँगा।"

पद (२७)

कितने दिन और ठिकानो है।
एक डाल पै पंछी बैठे, प्रात भये उड़ जानो है।।
कासौं कहनो कासौं सुननो, अपनो मन समझानो है।
सतगुरुजी की सीख मान के, राम नाम रच जानो है।।
करनी भरनी पार उतरनी, कर्मन-भार उठानो है।
या घर चान दिनन को बासो, अपने घर को जानो है।।
कलप-कलप क्यूँ, दुःखी होत है, तड़प-तड़प का पानो है।
जगत जाल में उरझे चित को, सहज-सहज सुरझानो है।।
कासों मोह प्रीत हो कासौं, कासौं नेह लगानो है।
परे रहो गुरु के चरनन में, चार घड़ी सुख पानो है।।
देख लियो जग में कछु नाहीं, बिरथा मन भरमानो है।

'बिरजदास' अब थिरता लीजै, कित आनो कित जानो है।।

इस जगत में कितने दिन और ठिकाना हो सकता है? एक शाखा पर पक्षी बैठता है, तो दूसरे दिन प्रातःकाल उड़कर चला जाता है। ऐसे ही इस जगत में निवास का समय मिला है। किसे कहूँ और समझाऊँ? अब तो केवल अपने मन को ही समझाता हूँ। जगत के जाल में उलझे हुए चित्त को धीरे-धीरे समझाना है। ब्रजदासजी कहते हैं- "इस जगत में सबकुछ देख लिया; केवल मन का भ्रम है।"

पद (२८)

गुरुवर बेगि सहारो दीजै।
बह्यो जात हूँ भवसागर में, कर बढ़ाय गह लीजै।।
कोटि जनम तक भटके डोल्यो, अब के करूणा कीजै।
जग-चरनन ते मोहि खींच के, निज चरनन में लीजै।।
भीतर मन खाली हो जावै, दूर कामना कीजै।
शुद्ध-विशुद्ध हियो हो जावै, सकल वासना छीजै।।
है रस सागर मो सूखे को, रस अनुभूती दीजै।
ऐसो प्रेम प्रदान कीजियो, पाथर हियो पसीजै।।
मैं असहाय भयो सब भाँती, कछु करि रक्षा कीजै।
'बिरजदास' अरदास करत है, हृदय रोग हर लीजै।।

हे गुरुदेव! आप शीघ्र सहारा दीजिये। भवसागर में निमग्न हो रहा हूँ कोटि जनम भटक लिया अब तो करूणा कीजिये। मेरी कामनायें नष्ट हो जायें, हृदय विशुद्ध हो जाये और श्रीराधामाधव के चरणकमल में प्रेम हो जाये। ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं सब प्रकार से असहाय हो गया हूँ। मेरे हृदय रोग को विनष्ट कीजिये।"

पद (२९)

गुरुवर मेरी ओर निहारो।
मैं दासन में दीन-हीन हूँ, मोहे बेगि सँभारो।।

भवसागर में ज्वार उठ्यो है, सूझत नाहिं किनारो।
हे अजानबाहू मैं डूब्यो, दीज्यो मोहि सहारो।।
मैं पतितन सिरमौर कहाऊँ, दया लागि मोहि तारो।
मोरे काज कृपा के सागर, अपनो बिरद बिचारो।।
आन पर्‌यो कुटिया के द्वारे, करूण भाव उर धारो।
कृपा रूप करूणा के सागर, करूणा दृष्टि डारो।।
'बिरजदास' है शरण तिहारी, त्रिविध ताप कूँ टारो।
गुरुदेव गुरु-गरिमा तुम्हरी, कछु करि मोहि उबारो।।

हे गुरुदेव आप मेरी ओर स्नेह दृष्टि कीजिये। आप ही मुझे संभाल सकते हो। भवसागर की ज्वार-भाटा में मुझे कहीं-भी किनारा नहीं दिखाई दे रहा है। इसीलिये निज रक्षा हेतु आपकी कुटीर के सम्मुख पड़ा हुआ हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "त्रिविध ताप मुझे सता रहे हैं कृपा कर मुझे उबार लीजिये।"

पद (३०)

गुरुवर अपनो विरद विचारो।
मेरी करनी का देखत हो, अपनी ओर निहारो।।
हित अनहित कछु सूझत नाहीं, छाय रह्यो अँधियारो।
काटे ही अब पार परैगी, मो आँखिन को जारो।।
दिन-दिन उरझ्यो ही जावत है, हुयो जात है भारो।
गुरु बिनु बीर कौन सुरझावै, कर्मन को उरझारो।।
किन-किन ते बन्धन है गाढ़ो, किन-किन ते छुटकारो।
किन-किन को कितनो बाकी है, का दिन होहिं चुकारो।।
'बिरजदास' चहुं दिश जल ही जल, का विधि मिलै किनारो।
हे अजानबाहु मैं डूब्यो, दीज्यो बेगि सहारो।।

हे गुरुदेव! मैं कुछ भी निज हित विचार नहीं पाता हूँ। आप कृपा दृष्टि कर मेरा विवेक जागृत कीजिये। सदा हृदय में अंधकार बना रहता है, दिन-दिन जगत में उलझता जा रहा हूँ। आपके बिना मुझे सुलझा ही कौन सकता है? ब्रजदासजी कहते

हैं- "चारों ओर अपार भवसमुद्र है यदि आप मुझे सहारा नहीं देंगे तो मुझे किस प्रकार किनारा मिलेगा?"

पद (३१)

गुरुवर अनुपम नेह तिहारो।
छिन में ही सुरझा डारत हो, कोटि जनम उरझारो।।
ये दोउ नैन अमि के प्याले, रस बरसत अति भारो।
ऐक नजरिया जापै डारी, कर डार्‌यो मतवारो।।
राजा रंक, रंक पुनि राजा, मूक होत सुरवारो।
कर्ता पुरुष करै सो होवै, कोऊ न रोकनहारो।।
कहा कहूँ सतगुरु की महिमा, पाप-पुन्य सब जारो।
पल में ही हलको कर डारयो, कर्मन-बोझ अपारो।।
गुरु करूणा कर कुञ्जी दीन्हीं, उर में भयो उजारो।
'बिरजदास' अब खोल लियो है, हरि के घर को तारो।।

हे गुरुदेव! आपका प्रेम अनुपम है। करोड़ों उलझे जनों को आप क्षणमात्र में सुलझा देते हो। आपके नेत्रकमल अमृत के प्याले के समान हैं एक दृष्टि मुझ पर भी कर तृप्त कीजिये। आप रंक को राजा, हीन को सर्वज्ञ बना देते हो। ब्रजदासजी कहते हैं- "आप कृपा करके हरिधाम प्राप्ति की कुञ्जी बता देते हो।"

पद (३२)

मेरी सुरत गुरु सौं लागी।
मैं तो सब विधि भाग हीन ही, आज भई बड़भागी।।
एक आस गुरु पद दर्शन की, और आस सब त्यागी।
जग के कारज सोय गयी हूँ, गुरु के कारज जागी।।
धोबी घाट मच्यो घट माहीं, हिचक हिया ते भागी।
धोय-धोय उजरी कर लीन्ही, मन चूनरिया दागी।।
छिन-छिन छवि निरखती डोलूँ, भूख दरस की जागी।
अब तो मेरे हृदय-पटल पै, गुरु मूरतिया आगी।।

'बिरजदास' गुरु–पद बलिहारी, या विधि कियो विरागी।
जनम–जनम को रागी मनवा, आज बन्यो अनुरागी।।

हे परम पावन गुरुदेव! आपके श्रीचरणकमल में मेरी लगन लग गई है। एकबार के दर्शन मात्र से ही मेरी सर्व कामनायें विनष्ट हो गई हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं– "श्रीगुरुदेव के चरणकमलों पर बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने जगत आसक्ति को मिटाकर हरि चरण अनुरागी बना दिया है।"

पद (३३)

आयो जी मैं तो सतगुरु चरनन आयो।
नाम राशि दे मो निर्धन को, मालामाल बनायो।।
बाह्य–जगत सौं नातो टूट्यो, अन्तर आनँद छायो।
अब कहीं आनो–जानो नाहीं, आसन अचल जमायो।।
जनम–जनम के बन्धन काटे, द्वन्द्वातीत बनायो।
ऐसी करूणा कीन्हीं सतगुरु, उरझे को सुरझायो।।
ज्ञान रूप उर आनि बिराजे, मोह को पाश छुटायो।
शंका नाश करी करूणामय, मन को भरम मिटायो।।
पाप–राशि मोरी चुकने लागी, जब ते नाम सुनायो।
नाम जपन ते आनँद हो गये, सुमिरन ते सुख पायो।।
नित 'ब्रजदास' रहत उर आनँद, अविनाशी–पद पायो।
जब ते बाँह गही मोरे सतगुरु, सकल प्रपञ्च मिटायो।।

मैं तो अब पावन गुरुदेव के श्रीचरणों में आ गया हूँ। हरिनाम की राशि देकर मुझ निर्धन को धनवान बना दिया है। सर्व जागतिक सम्बन्ध छुड़वाकर हृदय में परम आनन्द प्रदान किया है। अब मुझे कहीं आना–जाना नहीं है।

ब्रजदासजी कहते हैं– "हृदय में सदा आनन्द बना रहता है– जब से सद् गुरुदेव की पूजा को प्राप्त किया है, तब से सकल प्रपञ्च ही नष्ट हो गये हैं।"

पद (३४)

हौं तो गुरु-पद-पावन गहिहों।
गुरु-नखमणि की ज्योति पाके, उर अँधियार मिटईहों।।
गुरु-पद-रज को अंजन करिके, नैनन ज्योति बढ़ईहों।
गुरु-पद-रेणू तेल हमारो, सिर के केश बधईहों।।
हरि करूणा ते गुरुपद पाये, गुरु करूणा हरि पईहों।
तजि 'ब्रजदास' अऊर वाँछना, प्रेम पदारथ लईहो।।

मैं तो अब गुरुजी के पतित पावन चरणारविन्द में पड़ा रहूँगा और दर्शन कर हृदय अन्धकार को मिटा लूँगा। गुरु पदरज अञ्जन लगाकर नेत्र ज्योति वृद्धि करूँगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु कृपा करूणा से दुर्लभ प्रेम पदार्थ को सहज ही प्राप्त कर लूँगा।"

पद (३५)

हमारे आनँद आठों याम।
जब ते गुरुपद धारण कीन्हे, सुधर गये सब काम।।
कित में अवधपुरी कित काशी, हम नहीं जानैं नाम।
गुरुपद में ही अड़सठ तीरथ, गुरुपद में ही धाम।।
आसन अचल जम्यो गुरुचरना, आतम सुख अविराम।
जग को हम सौं काम नहीं है, हमको भी क्या काम।।
हरि रूठे तो ठौर घनेरी, गुरु रूठे नहीं ठाम।
हरिपद ते भी गुरुपद ऊँचे, जहँ पूरण विश्राम।।
जे निशिबासर अपने गुरु के, पूजत पावन पाम।
तिनको दरश अमोघ जगत में, ते जन पूरण काम।।
अब 'ब्रजदास' कौन धन बाकी, जाकी ललक ललाम।
तीन लोक की पूँजी पाली, गुरुपद आनँद धाम।।

मेरे हृदय में आठों याम ही आनन्द बना रहता है। जब से श्रीगुरु शरणागति ली है सर्व कार्य सम्पन्न हो गये हैं। यदि श्रीहरि रूठ जायें तो श्रीगुरुदेव कार्य बना सकते हैं। यदि गुरु

असन्तुष्ट हो जायें तो श्रीहरि भी उस जन की रक्षा नहीं कर पाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं– "अब कौनसा धन शेष रह गया है, जिसकी रक्षा करूँ? सर्वलोकों की परम पूँजी तो पूज्य श्रील गुरुदेव ही हैं।"

पद (३६)

जिनके हरि–गुरु चरन पियारे।
ते जन तन सौं संग सबन के, मन सौं रहत नियारे।।
राग–द्वेष–छल–कपट न जानैं, हर्ष–शोक ते न्यारे।
या जग के जो नहीं काम के, ते जन हरि के प्यारे।।
परमारथ विपरीत पंथ है, विरला मरम विचारे।
जे जग आँखिन–तिनका ते ही, हरि–नैनन के तारे।।
जीव–जीव के हित की जे जन, निशदिन रहत विचारे।
ते जन या अँधियारे जग में, आनँद के उजियारे।।
हरि–गुरु वैष्णव के पद पंकज, जे अपने उर धारे।
को 'ब्रजदास' बिगारै उनको, हरि जिनके रखवारे।।

जिन्हें परम मंगलकारी श्रीगुरु चरणकमल प्रिय लगते हैं, उन्हें जगत के कार्य नहीं सुहाते हैं। उनकी रति–मति तो हरि गुरुचरण में ही लगी रहती है। ब्रजदासजी कहते हैं– "हरि गुरु वैष्णव चरणकमल ही हमारी सब प्रकार से रक्षा करते हैं।"

पद (३७)

मन रे लागि गुरु के चरना।
कालकूट विष युक्त कलि ते, जे चाहत उद्धरना।।
गत जाल ते रे मन मेरे, जे तू चहै निकरना।
तो सतगुरु की शरण लीजियो, जगत–आस मत करना।।
श्रीचरणों में अति शितलाई, कहा ताप सौं डरना।
अमृतकुण्ड नैन गुरुवर के, बहै प्रेम को झरना।।
मन भाख्यो भवसागर गहरो, का विधि होय उतरना।
सद्गुरुदेव कान में कह दी, या विधि होय उबरना।।

गुरु-कुटिया के द्वारे मितवा, दैके बैठयो धरना।
'बिरजदास' दासन को दासा, शरणागत की शरना।।

अब तो हमने श्रीगुरु चरण आश्रय प्राप्त कर लिया है। निज कल्याण हेतु मनुष्य सर्वदा गुरु चरणों का ध्यान करे। सर्व देव गुरुदेव में विद्यमान रहते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के बिना कोई भी हरिचरणों को प्राप्त नहीं कर सकता है।"

पद (३८)

मन रे श्रीगुरु चरन पखार।
बैनन ते अति आनँद बरसै, नैनन ते जलधार।।
प्रबल भाव के पुष्प चढ़ारे, नीर नेह को डार।
प्रभु-प्रेम की बहै सुरसरी, करै पतित उद्धार।।
ऐसो सावन आवै या छिन, पावन चलै बयार।
गुरु-करूणा की बदरी बरसै, उड़ि उड़ि परै फुहार।।
दृढ़ अनुराग राखि उर माहीं, श्रद्धा अटल अपार।
धोय-धोय पग दृग-बिन्दुन सौं, निज मग लेहु सुधार।।
'बिरजदास' कर बात ध्येय की, रख मत हेय विचार।
देह-गेह की सुधि बिसरा के, पा गुरु-नेह अपार।।

अरे मन! गुरुजी के चरणकमलों से प्रेम कर। जगत में भटकते हुए तो अनेक जन्म व्यतीत हो गये। विषय-विष को त्याग भगवद् ध्यान कर। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे गुरुदेव! आप निज कर-कमल हमारे मस्तक पर रखिये। आपका ही हमें एकमात्र विश्वास है।"

पद (३९)

उर में गुरुपद-पंकज धार।
जे चाहत कल्याण आपनो, जे चाहत उद्धार।।
जब चाहै तब जाय पकर लै, करि के करूण पुकार।
खुले रहत हैं सदा-सर्वदा, गुरु कुटिया के द्वार।।

सकल तीर्थ ठाड़े कर जोरे, अमल-विमल जलधार।
सर्व देव गुरु देह समाये, लीजै चरन पखार।।
शेष-महेश करैं नित वन्दन, कोऊ न पावै पार।
सर्व श्रुति जिनपै न्यौछावर, सकल वेद बलिहार।।
अपने बल कानै कछु कीन्हों, लीन्हों जनम बिगार।
गुरु बिन हरिपद कोऊ न पावै, सब साधन बेकार।।
जरा रोग पतझर आवत है, बीती जात बहार।
'बिरजदास' कर जोरत अब तो, आछी बात विचार।।

हे मन! तुम गुरुजी के चरणकमल की रज को धारण करो। ये चन्दन के समान शीतल है। जिसने गुरुदेव के चरणकमल रज धारण कर ली उसे स्वर्ण मुकुट की क्या आवश्यकता है? गुरु चरणरज पत्थर सम हृदय को भी द्रवित कर देती है। ब्रजदासजी कहते हैं- "भवसागर गहन समुद्र है, गुरु चरणाश्रय से ही इससे पार हुआ जा सकता है।"

पद (४०)

गुरुवर निज चरनन रति दीजै।
जनम-जनम तक भटक्यो जग में, अब अपनो कर लीजै।।
पान करूँ दिन-रात नाम-रस, विषयन-गरल छुटीजै।
काम ओर ते सुरत हटा कर, राम ओर कर दीजै।।
छक्यो-छक्यो सो डोलूँ मग में, उर आनँद उमगीजै।
गद्‌गद् गिरा नैन जल बरसै, गात प्रेम में भीजै।।
लौकिक कर्म सकल छुटि जावैं, लोक लाज सब छीजै।
हरि-प्रीतर्थ काज हों सारे, अस उज्ज्वल मति दीजै।।
'बिरजदास' की बाधा हरिये, वरद हस्त धर दीजै।
घर जायो सो राखो माहे, निबल बाँह गह लीजै।।

हमें तो पूज्यपाद श्रीगुरुदेव के पावन चरणों का ही विश्वास है। कोटि जन्मों के बिछुड़े हुए मुझ अधम जीव को वे श्यामसुन्दर से मिलाने वाले हैं। मोहरूपी निशा को नष्ट करने

वाले हैं। श्रीगुरुदेव की करूणा से ही मैंने श्रीवृन्दावन धाम के दर्शन पाये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "अब तो सम्पूर्ण झंझट मिट गये हैं, अब आवागमन का दुःख नहीं है।"

पद (४१)

रे मन गुरु चरनन रज लीजै।
चन्दन के समसीस चढ़ा के, निसदिन वन्दन कीजै।।
कौन कहे महिमा वा जनकी, आगम-निगम थकीजै।
जाके सिर गुरु पदरज सौहे, स्वर्ण मुकुट का कीजै।।
मगन होय मन मोद मनावै, रोम-रोम रस भीजै।
गुरुपद रेणू गात छुवत ही, पाथर हीयो पसीजै।।
जो तन गुरुपद रेणू मण्डित, ताकी कहा कहीजै।
काल कराल बदन की शोभा, देखत ही कर मींजै।।
अतुल प्रभाव अमित गुनरज के, का मुख महिमा कीजै।
'बिरजदास' भवसागर गहरो, याके बल तर लीजै।।

अरे मन! श्रीगुरु के पदपंकज का भजन करो। सदा सर्वदा नाम जपो- ये सकल साधन शिरोमणि हैं। श्रीगुरुदेव के बिना कोई भी कार्य में नहीं आयेगा। इसीलिये सम्पूर्ण आडम्बरों को त्याग गुरुदेव के रंग में रंग जाइये। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के स्थान पर श्रद्धापूर्वक जाना चाहिये।"

पद (४२)

भरोसो गुरु पद पावन को।
कोटि जनम के मो बिछड़े सौं, स्याम मिलावन को।।
मोह-निशा के कठिन पाश ते, सजग करावन को।
हरि-चरनन की सुधि करवाकै, जगत भुलावन को।।
जगत प्रशंसा छोड़ रैन-दिन, हरिगुन गावन को।
कुत्सित कर्म छुड़ा के मन कूँ, सत पै लावन को।।
द्वार बन्यो उर की गगरी में, रस के आवन को।
गुरु करूणा ते पाय लियो है, पथ वृन्दावन को।।

जननी जठर जरावै नाहीं, दुःख नहीं जावन को।
'बिरजदास' अब मिट्यो झमेलो, पुनि-पुनि आवन को।।

श्रीगुरुदेव के चरणकमलों का ही हमें भरोसा है। करोड़ों जन्मों के बिछड़े हुए मुझ अधम जीव को श्रीश्यामसुन्दर से मिलाने वाले हैं। मोहरूपी निशा के कठिन पाश को नष्ट करने वाले हैं। श्रीहरिचरणों की स्मृति करवाकर जगत को भुलवाने हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "अब मेरे सम्पूर्ण झंझट मिट गये हैं। श्रीगुरुदेव की कृपा से आवागमन रूपी दुःख विनष्ट हो गया है।"

पद (४३)

गुरु पद पंकज पावन भज रे।
नाम जपन कूँ पकर बावरे, अरू सब साधन तज रे।।
सरल-सहज पथ नाप जपन को, आन लगन सब तज रे।
और विधिन बहु जोर परैगो, बिन कारण मत पज रे।।
अति उत्साह हिया में भरकै, शीश चढ़ा के सज रे।
सकल रजन में सबसे ऊँची, गुरु चरनन की रज रे।।
गुरु बिन कोई काम न आवै, सुर-नर-किन्नर-अज रे।
कौन काम के महल-दुमहले, कौन काम के गज रे।।
छोड़ सकल आडम्बर मितवा, बहिर रंग सब तज रे।
'बिरजदास' गुरु के घर जईये, अन्तर ते सजधज रे।।

हे भ्राता! श्रीगुरुजी पावन चरणारविन्द का भजन करो। सदा सर्वदा हरिनाम जपो। ये सकल साधन शिरोमणि है। श्रीगुरु के बिना कोई भी कार्य नहीं आयेगा। इसीलिये सम्पूर्ण आडम्बरों को छोड़कर श्रीगुरुदेव के रंग में रंग जाइये।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के भजनस्थल पर श्रद्धापूर्वक जाना चाहिये और कृपा प्राप्त करनी चाहिये।"

पद (४४)

गुरुपद प्रान्त सुहानो रहिये।
अटल वास करिये गुरु चरनन, हरिहर को जस गईये।।
इत मुरली उत चन्द्र भाल पै, दरसन कर सुख लईये।
हरिहर गुरु सब तत्त्व एक है, अमित भाव में बहिये।।
जो आवे सोई धरो शीश पै, हित अनहित सब सहिये।
कौन बड़ो अरू को छोटो है, अपने मुख मत कहिये।।
गुरुपद कमल छांड़ि के मूरख, कौन सिद्ध ढिंग जईये।
कौन के आगे झुकिये बन्दे, कौन की हा हा खईये।।
और कछू अवलम्ब नहीं है, काहे उमर गँवईये।
'बिरजदास' गुरु के पद पावन, पूजि परम पद पइये।।

श्रीगुरुजी महाराज के श्रीचरणकमल अत्यन्त सुहावने हैं। उनके सान्निध्य में बैठकर सदैव भगवद् गुणगान गाना चाहिये। श्रीहरिहर का गुणगान परम मंगलदायक है। इधर मुरली है तो उधर चन्द्रमा है, दोनों का दर्शन कर सुख प्राप्त कीजिये। हरिहर एक तत्त्व है। इनमें कौन बड़ा-छोटा है? ये निज मुख से कभी मत कहिये; क्योंकि हरि और हर परस्पर एक-दूसरे को प्रणाम वन्दन स्तुति करते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के पावन चरणकमल का पूजन कर परम पद प्राप्त कीजिये।"

पद (४५)

हरिगुरु वैष्णव चरण चाँपिये।
जे चाहत कल्याण आपनो, हरख सहित हरिनाम जापिये।।
अन्तरमुख वृत्ति कूँ करि कै, गुरु के भावन माहिं झाँकिये।
अभिनिवेश जो चहो भजन में, सतगुरुजी की सैन भाँपिये।।
अपने कर लगाम खुद पकरो, झपट मार के चतुर झाँपिये।
कस काठी चढ़ि मन तुरंग कूँ, गुरु के घर की ओर हाँकिये।।
हरि प्यारों की संगत कीजै, महत-संग को मोल आँकिये।
जगत संग में कछु नहीं मिलनो, भर-भर धोबे धूर फाँकिये।।

कौन बुरो अरू भलो कौन है, छोट बड़ो का हेत नापिये।
कहा लाभ औरन कूँ मापे, 'बिरजदास' निज भाव मापिये।।

श्रीहरिगुरु वैष्णव चरणों का संवाहन करते रहिये। जो अपना कल्याण चाहता है, वह हरिहर का नाम जप करे। अपने वृत्ति को अन्तर्मुख करके श्रीगुरु के भावानुसार सेवा कीजिये। जो भजन में अभिनिवेश चाहता है, वह सदा सर्वदा श्रीगुरु के इंगित के अनुसार साधन और सेवा करे। हरि के प्रिय संत जनों महिमा को समझिये; जगत के संग में आपको कुछ भी नहीं मिलेगा। ब्रजदासजी कहते हैं- "कौन बड़ा है, कौन भला है? इसप्रकार से दूसरे लोगों को मापने का कोई लाभ नहीं है। यदि मापना ही है तो अपने भावों को मापिये।"

पद (४६)

देखी बहुत अनोखी बात।
गुरु चरनन पै शीश नवावै, मुख पर मारे लात।।
गुरु वचनन को भूल गयो तू, व्यर्थ रहयो इतरात।
माला खूँटी टाँक दयी है, मंत्र दियो बिसरात।।
रस ले-लेकर बात करत है, मन्द-मन्द मुस्कात।
और गुरून ढिंग निशदिन-जावत, अपने सौं कतरात।।
स्वान गति कर लीन्ही अपनी, घाट-घाट भटकात।
मूल भूल कर शूल कमावत, फूल रह्यो बे बात।।
गुरु पद पंकज कब पकरैगो, कब पुलकैगो गात।
'बिरजदास' सठ कब सुधरैगो, अवसर बीत्यो जात।।

बहुत ही अनोखी बात है- श्रीगुरु चरणों पर शीश नवाते हैं और उनके वचनों को नहीं मानते हैं, माला मंत्र को भी भुला दिया है। श्रीराधामाधव की रसमयी लीलाओं का तो खूब वर्णन करते हैं; किन्तु गुरु के निकट जाने में कतराते हैं ऐसे लोगों की गति श्वान के समान है जो यथार्थ आचरण न कर घाट-घाट पर भटकते रहते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "ऐसे लोग कब सुधरेंगे दुर्लभ अवसर तो बीता ही जा रहा है।"

पद (४७)

मनवा गुरु की मौज मनईये।
रहिये उनकी चरन-शरन में, चाहे जित को जईये।।
ऊपर-नींचे-दाँये-बाँये, दसहूँ दिशा में जईये।
जित-जित देखो तित-तित आली, गुरु को तत्त्व लखईये।।
सुख-दुःख-शीत-घाम-कठिनाई, सहज-सहज सह जईये।
जीवन-मरण-लाभ-हानी में, मंगल भाव रखईये।।
सब गुरुवन में तत्त्व ऐक है, कबहुन भेद रखईये।
सतगुरु ऐक, अनेक है सेवा, मुदित-मना हो पईये।।
जे चाहत उत्तम-पद मितवा, तो ऐसी मति पईये।
'बिरजदास' तजि या जग को जस, गुरुवर के गुन गईये।।

हे मन! श्रीगुरुदेव का आनन्द प्राप्त कर उनकी चरण-शरण में रहकर साधन कर फिर तू कहीं भी जायेगा वहीं तुझे श्रीगुरुदेव की मनोहारी छवि ही दिखाई देगी। सुख-दुःख, शीत-ग्रीष्म सबको सहन कर मंगल का ही भाव रख। एक बात और समझ जगत के सब गुरुओं में एक ही तत्त्व विद्यमान है कभी-भी भेद मत करना। ब्रजदासजी कहते हैं- "इस जगत की आसक्ति को त्याग श्रीगुरु गुणानुवाद गाते रहना चाहिये।"

पद (४८)

शकुन सब साँचे भये मेरी वीर।
आज मेरे सतगुरु घर आये, बहत नेह को नीर।।
कहा कहूँ कैसे गुरु पाये, गुनन निधि-गम्भीर।
शूरन में वे शूर अनोखे, धीरन में अति धीर।।
बह-बह जात आज सत्संग की, शीतल-मन्द समीर।
मगन भई मन लेत हिलोरे, नेह नदी के तीर।।
स्वेद-कम्प-अश्रू सब आये, पुलकित भयो शरीर।
अपने हाथ उठायो मोहे, राम-नाम को चीर।।
दरश किये सारे दुःख भागे, मिटि त्रिविध की पीर।

बड़ो भाग 'ब्रजदास' आपनो, गुरु चरनन में सीर।।

मेरे सभी सगुन अब सच्चे हो गये हैं। आज मेरे श्रील गुरुदेव का गृह में आगमन हुआ है और उनके नेत्रकमल से प्रेमाश्रु बह रहे हैं। क्या कहूँ उनकी महिमा? वो गुणों में गम्भीर, धैर्यवानों में परम धैर्यमान और अति शूरवीर हैं। उनकी सत्संग की शीतल मंद समीर बह रही है जिससे अब मेरा मन हिलोर ले रहा है। ब्रजदासजी कहते हैं– "हमारा बड़ा भाग्य जो श्रीगुरु चरणारविन्द का हम दर्शन कर पा रहे हैं।"

पद (४६)

गुरुवर मेरी कुँज पधारे।
मैं शबरी सी राह तकत ही, निशदिन पंथ बुहारे।।
मुतियन चौक पुरायो आँगन, चमक उठे घर-द्वारे।
सतगुरु आन बिराजे चौकी, कोटि भानु उजियारे।।
पुष्पन हार गले पहिरायो, पावन चरन पखारे।
चन्दन चर्चित कियो भाल पै, दर्शन भये सुखारे।।
कंचन थाल आरति कीन्ही, जय-जय शब्द उचारे।
भूषन-वसन भेंट धर दीन्हे, आनन्द भये हमारे।।
चरन परत ऐसी भयी आली, सब दुःख भये किनारे।
'बिरजदास' मो दीन कुटि में, रस के बहे पनारे।।

श्रीगुरुदेव मेरी कुञ्ज में पधारे हैं। मैं शबरी के जैसी दिवारात्रि उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रही हूँ। चौकी और गृह द्वार को सजा दिया है। पूज्यपाद गुरुदेव चौकी पर बैठे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोटि सूर्य ने निज उज्ज्वलता को प्रकाशित कर दिया है। पुष्प हार कण्ठ में धारण कराये हैं और श्रीमस्तक पर चन्दन सुशोभित किया है। दर्शन कर मन को परम सुख की प्राप्ति हो रही है।

ब्रजदासजी कहते हैं– "इस दीन की कुटिया में आज रस की धारा बह रही है।"

पद (५०)

जग में गुरु सानिध्य अमोघ।
धन्य भये ते नर बड़भागी, जिनके बन्यो सुयोग।।
गुरु चरनन में जो नर बैठयो, किये हिया में योग।
कहा बिगार करेंगे वाको, सुखन-दुःखन के थोग।।
परदो खुलै, भरम सब भागै, जावें संशय-रोग।
बिगरे भये पुनः बनि जावें, संजम के संजोग।।
गुरु सामिप्य सकल सुख कारक, मिट-मिट जावें रोग।
कट-कट जात कर्म के बन्धन, छुट-छुट जावें भोग।।
'बिरजदास' गुरु चरण निकटता, सब विधि करत निरोग।
भस्मीभूत होत छिन माहीं, जनम-जनम के घोघ।।

जब से श्रीगुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त किया है तब से बड़भागी और धन्य हो गया हूँ। श्रीगुरु चरणकमल ने सर्व दुःख विनष्ट कर दिये हैं, सर्व भ्रम, शोक समाप्त कर दिये हैं। कर्मों के कठिन बन्धन भी नष्ट हो गये हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुजी के मनोहर चरण की निकटता ही सर्व रोग निवारक है।"

पद (५१)

लखे जब सतगुरु मेरी ओर।
सुरझि गई ता दिन ते छिन में, कर्मन-उरझी डोर।।
ऐसो उर उजियारो कीन्हों, मिटयो तिमिर को जोर।
निकस-निकस के भागन लागे, हृदय गेह के चोर।।
तजि तुड़ाव स्यानो भयो साधो, विचरण छांड्यो चोर।
आनि बंध्यो अपने खूँट सौं, मेरे मन को ढ़ोर।।
निमिष-निमिष में दर्शन पाऊँ, कहा साँझ कहा भोर।
गुरुपद चन्द भये निशिवासर, मैं नित भयो चकोर।।
हरिरस पान करन में लाग्यो, विषयन को बिस छोर।
'बिरजदास' गुरुदेव-अनुग्रह, मो मन भयो विभोर।।

जब से श्रीसद्गुरुदेव ने कृपा दृष्टिपूर्वक मेरी ओर निहारा है। उस दिन से मेरे कर्मों की डोर जो उलझी हुई थी। वह सुलझ गई है। हृदय में ऐसा उजाला हुआ है कि सम्पूर्ण अन्धकार मिट गया है। श्रीगुरु चरणकमल चन्द्रमा हैं और मैं चकोर की भांति उनको निहार रहा हूँ।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के अनुग्रह से मेरा मन विभोर हो गया है।"

पद (५२)

गुरु तुम आनँद बहौत कर्‌यो।
विगलत होय हियो बह आयो, आँखिन आय झर्‌यो।।
काल-व्याल कछु कर नहीं पावै, छिन-छिन जात डर्‌यो।
जो कर-कमल अभय कर डारै, सो मम शीश धर्‌यो।।
मगन भयो मन तन पुलकायो, नैनन-नेह ढ़र्‌यो।
जो अजहौं रीतो सौ डोल्यो, डोलत आज भर्‌यो।।
चहूँ और शीतलता छाई, मन में मोद भर्‌यो।
सतगुरुर कृपा-अगन ते अघवन, अपने आप जर्‌यो।।
सब उलटे, सुलटे बनि आये, सब व्यवधान टर्‌यो।
भजन पंथ अनुकूल भयो है, ज्यों-ज्यों पाँव धर्‌यो।।
'बिरजदास' गुरु कियो परमहित, हरि की गोद धर्‌यो।
सकल शुभाशुभ करम नसाये, याहि जनम तर्‌यो।।

हे गुरुदेव! आपने अत्यन्त आनन्द प्रदान किया है। मेरा हृदय द्रवित कर दिया है और नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। अब काल-ब्याल कुछ भी नहीं कर सकता है। आपने निज पावन कर-कमल मेरे मस्तक पर रख मुझे अभय कर दिया है। सम्पूर्ण शीतलता प्राप्त हो गई है एवं सर्व व्यवधान नष्ट हो गये हैं। भजन पथ को सर्व प्रकार से अनुकूल बना दिया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "आपने मेरा परम हित करके श्रीहरि की गोद में बैठा दिया है।"

पद (५३)

मो धन गुरु चरनन की धूरी।
ताही में मोरी सकल सम्पदा, ताही जीवन मूरी।।
अस प्रभाव वा धूरी कीन्हों, मन छाँड़ी मगरूरी।
मोर हिया में आनि बसे है, सेवा-साँच-सबूरी।।
सकल आस-विश्वास वाँछना, का विधि रहै अधूरी।
जा दिन ते शरणागत कीन्हो, भई साध सब पूरी।।
कौन देव की चलै गुरु पै, कौन करे मगरुरी।
जगतनियन्ता स्वयं हरि जब, करते फिरैं हजूरी।।
धारि लेऊ 'ब्रजदास' शीश पै, जे चाहत सुखमूरी।
सकल देह पावन कर देगी, गुरु-पाँवन की धूरी।।

श्रीगुरुदेव की चरणकमल रज ही मेरा धन है। वही मेरी सम्पूर्ण सम्पदा और जीवन मूल है। जिस दिन से मैं उनके शरणागत हुआ हूँ सर्व कामनाऐं पूर्णता को प्राप्त हो गई हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रील गुरुदेव के पावन चरणारविन्द की रज देह को पवित्र कर देती है।"

पद (५४)

जग में जे गुरुमुख हो जावै।
साधन-द्वार खुलै ते जन को, सकल मनोरथ पावै।।
कबहु न होत पराभव ताको, उद्भव हो तो जावै।
जो गुरु-पग की ठोकर खाले, जग-ठोकर नहीं खावै।।
विगलित होय हियो आँखिन में, अँसुवा बन के आवै।
गुरु करूणा को रस बरसा दे, जिन बीथिन में जावे।।
अस प्रभाव आ जावै तामें, जो समरथ गुरु पावै।
आपहु जा पहुँचै निज देशन, औरन कूँ ले जावै।।
को 'ब्रजदास' सुनै वा जन की, सिर धुनि-धुनि पछतावै।
जो मानुष को तन पाके भी, मनमुख ही रह जावै।।

जगत में जो लोग गुरुमुखी हो जाते हैं। उसके साधन

द्वार खुल जाते हैं। वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। उसका कभी-भी अहित नहीं होता है। श्रील गुरुदेव सेवक को हाथ पकड़कर भगवद् धाम में ले जाते हैं। यही उनकी अहैतुकी करूणा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "जो मनुष्य मनमुखी हो जाता है वह दुष्परिणाम प्राप्त करने पर केवल पश्चाताप ही पश्चाताप करता है।"

पद (५५)

रे मन गुरु वचनन रूचि लीजै।
उनकी सी ही सदा राखियो, अपनी सी मत कीजै।।
नैनन के संकेत समझि कै, अपने उर धर लीजै।
जोई-जोई गुरु मुख ते निकसै, रे मन सोई सोई कीजै।।
द्रवित होंय जब नैन कटोरे, अंजलि में भर लीजै।
धोय-धोय गुरु के पद पावन, अन्तर में शुचि कीजै।।
कहा होत जग के रीझन ते, कहा होत कछु लीजै।
वा दिन अपनो भाग सरईयो, जा दिन सतगुरु रीझै।।
या जग के हीरे-मोतिन कूँ, डार कुवा में दीजै।
'बिरजदास' खाली झोली में, गुरु करूणा भर लीजै।।

हे मन! श्रीगुरुजी महाराज के मनोहारी वचनों में रूचि बना। सदा सर्वदा उनकी आज्ञा का पालन कर अपना मन मुख कार्य मत कर। उनके नेत्र संकेतों को समझकर हृदय में धारण कर। जगत के रीझने से क्या मिल जायेगा? तू तो उस दिन अपना भाग्य समझना जिस दिन तेरी सेवा और प्रीति से श्रीगुरुदेव रीझ जायें। ब्रजदासजी कहते हैं- "अपनी रिक्त झोली को श्रीगुरुदेव की कृपा करूणा से भर ले।"

पद (५६)

बतियाँ जानत-जानत जानी।
लागत-लागत उर में लागी, मानत-मानत मानी।।
गुरु के नैने नेह के सागर, लहर-लहर लहरानी।

तिनकी सैन गूढ़ अति सजनी, समझ-समझ समुझानी।।
सत गुरुदेव सकल सुख कीन्हें, अन्तर के अवदानी।
सहज-सहज सब खेल बन्योरी, मन मार्‌यो अभिमानी।।
काल कराल कहा कर लीन्हों, कर न सक्यो कछु हानी।
जेई-जेई जीव अटल कर राखी, सतगुरुजी की बानी।।
'बिरजदास' गुरु की करूणा को, लीन्हों मरम पिछानी।
दान-मान औरन कूँ दीन्हों, सब विध भये अमानी।।

श्रीगुरुदेव के वचनामृत का सदैव पालन करो। उनके नेत्र प्रेम के समुद्र हैं और उनकी कृपा से ही इंगित समझ में आते हैं। अब मेरा सर्व कार्य सिद्ध हो गया है। कराल-कलिकाल भी कुछ भी हानि नहीं कर सकता। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु महाराज की करूणा का मर्म मैंने उनकी कृपा से पहचान लिया है।"

पद (५७)

गुरु की इक-इक बात खरी।
बिगरी सुधर गयी वा जन की, जानै शीश धरी।।
साधक के हित-अनहित काजे, कबहुन चूक करी।
कबहुन हिचक भई सच कहते, कबहुन जीभ डरी।।
सुर कठोर, उर अति कोमल, लागत शब्द-झरी।
वाणी खार, प्यार मन माहीं, अँखियाँ भाव भरी।।
बाहर गिरा वज्र सी लागै, भीतर मोद भरी।
ताको हियो सरस कर डार्‌यो, जापै बरस परी।।
का 'ब्रजदास' कहूँ गुन वाके, जीवन-नाव तरी।
भाव हित सतगुरु की बानी, जानै श्रवन करी।।

पूज्यपाद श्रीगुरुदेव की एक-एक बात खरी है, जिसने उसको शीश पर धारण किया है उसकी बिगड़ी सर्व विधि से सुधर जाती है। श्रीगुरुदेव बाह्य रूप से किञ्चित् कठोर अनुशासन रखते हैं; किन्तु हृदय में तो कोमलता ही कोमलता ही भरी

रहती है। मन में प्रेम भरा हुआ है और नेत्र भाव में उन्मत्त हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुवाणी का जिसने श्रवण कर आचरण किया है उसका सदैव कल्याण हुआ है।"

पद (५८)

जाके शब्द-बाण की लागी।
ताके खुले कपाट हिया के, तुरत भयो बैरागी।।
गुरु के वचन अटल करिमानै, जो साधक बड़भागी।
वाको मोह मिट्यो छिन भर में, मन ते ममता भागी।।
मोहपाश में बँध नहीं पावै, तृष्णा कोसन भागी।
सिर-धुनि-धुनि माया पछितावै, हाथ न आवै त्यागी।।
कहा बिगारै काल बापरो, लखि अवधूत विरागी।
सो निशंक हो बैठ्यो जाके, बात समझ में आगी।।
जानै कौन गति को पहुँचे, कोटिन जीव-अभागी।
जिनके सतगुरु वचन न लागे, तिन को ममता खागी।।
ता दिन ते आनन्द भयो है, सुन 'ब्रजदास' विरागी।
जा दिन मन-मृग मार गिरायो, श्रीगुरुवर-अनुरागी।।

जिसके हृदय में श्रीगुरुदेव के मुख निःसृत शब्दों का प्रभाव हुआ है उसके हृदय पट खुल गये हैं वही सबसे बड़ा बड़भागी है। वह उन वचनामृत को धारण कर मोह व तृष्णा को त्याग देता है। काल उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है वह निश्चिन्त होकर बैठ जाता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "जिसने मनरूपी शत्रु को निहत कर दिया है वह सदा सर्वदा आनन्द ही प्राप्त करता है।"

पद (५९)

बलैंयाँ दोनों हाथन लईये।
जा घर में गुरु आन बिराजे, ता घर की का कहिये।।
भाल तिलक गल कण्ठी सोहे, सुन्दर वेश धरईये।
जाके मुख हरिनाम बिराजै, तापै बलि बलि जईये।।

गुरुमुख के काँकर ही आछे, लेकर शीश चढ़ईये।
मन मुख के हीरे-मोतिन को, तजि आगे बढ़ जईये।।
मूढ़-गँवार हीन सब ही विधि, दीन-मलीन न कहईये।
गुरु प्यारो कैसो भी होवै, ले उर कण्ठ लगईये।।
'बिरजदास' नैनन की अञ्जलि, भरि-भरि दर्शन पाईये।
जो निशदिन हरि गुरु सौं लाग्यो, ताजन के गुन गईये।।

मैं अपने दोनों हाथों से बलैंया लेता हूँ जहाँ श्रीगुरुदेव विराजते हैं वह स्थल धन्य हो जाता है। उनके मस्तक पर सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक है एवं कण्ठ में तुलसी माला सुशोभित है। गुरु मुखी कंकण को भी शीश पर धारण करना चाहिये और मन मुखी के हीरे को भी त्याग देना चाहिये। ब्रजदासजी कहते हैं- "नेत्रों से श्रीगुरुदेव का दर्शन कीजिये और उनका गुणानुवाद गाइये।"

पद (६०)

गुरु की पाहुँनियाँ सिर धरिये।
जा विधि शेष धरी सिर पृथ्वी, ता विधि गाढ़ पकरिये।।
जा विधि गिरि धरे सिर धरनी, ता विधि मस्तक धरिये।
जा विधि वृक्ष धरयो सिर अम्बर, ता विधि धारण करिये।।
नैंक न दूर करो मस्तक ते, चाहे जितै बिचरिये।
धरी भई है सदा शीश पै, ऐसो भाव पकरिये।।
सब विधि पूरण काम पादुका, अस विचार उर धरिये।
छिन-छिन ध्यान कीजियो मन में, कबहुन छवि बिसरिये।।
'बिरजदास' पाहुँनियाँ के बल, निशदिन आनँद करिये।
मुकटमणि सम धरो शीश पै, कहा काल ते डरिये।।

श्रीगुरुदेव की चरण-पादुका मस्तक पर धारण करनी चाहिये। जैसे शेष पृथ्वी को, पृथ्वी पर्वतों को धारण करती है इसीप्रकार श्रीगुरु चरण-पादुका मस्तक पर धारण करनी चाहिये। श्रीगुरु चरण-पादुका का श्रद्धापूर्वक ध्यान स्मरण करते

रहना चाहिये। ब्रजदासजी कहते हैं- "इन्हीं के कृपा बल पर दिवारात्रि निश्चिन्तता पूर्वक आनन्द मग्न रहना चाहिये।"

पद (६१)

गुरु कर जाके सिर धर देत।
ताके उर के करूणा करके, सब औगुन हर लेत।।
रस विहीन रसवन्त बनत है, आनँद सौं भर देत।
पंक-कीट पुष्पन पै बैठे, भौंरा सो कर देत।।
सब में रह कर सब ते न्यारा, अस रहनी कर देत।
कोऊ मरम समझ नहीं पावै, घर में ही घर देत।।
कठिन कुसंग छुरावत छिन में, सब भटकन हर लेत।
जाते भजन बेलि बढ़ि जावै, ऐसे औसर देत।।
'बिरजदास' का करूँ बड़ाई, सतगुरु का कर देत।
पामर जीव ब्रह्म सौ लागै, ऐते गुन भर देत।।

पूज्यपाद श्रीगुरुदेव जिसके मस्तक पर अपना कर-कमल पधरा देते हैं उसके समस्त अवगुणों को विनष्ट कर देते हैं, शुष्क मनुष्य को रसवन्त बना देते हैं एवं जगत से विलक्षण बना देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "सद्गुरुदेव क्या नहीं दे सकते? अधम जीव को भी परब्रह्म के दर्शन करा देते हैं।"

पद (६२)

जाके घर में गुरु को वासा।
ताके घर में आप बिराजत, पूरण प्रेम प्रकासा।।
का अपमान, मान है कैसा, कैसी आस-निरासा।
सुख-दुःख ताको व्यापत नाहीं, उर बिच रहत उजासा।।
जित आवन, आनँद हो जावत, लागत गरल, सुधा सा।
जग निवास ताके उर माहीं, निश दिन करत निवासा।।
कर्मन को उरझार मिटत है, होत तिमिर को नासा।
जीवन मुक्त अवस्था पावत, रहत सदा सुरझा सा।।
अपनो बिरद बिचारो स्वामी, पुरवौ मेरी आसा।

श्रीगुरुदेव बिराजो उर में, विनय करत 'ब्रजदासा'।।

जिसके घर में श्रीसद्गुरुदेव का वास है, उसके घर में आप विद्यमान हो जाते हैं। पूर्ण प्रेम का प्रकाश हो जाता है। हृदय उज्ज्वलता से भर जाता है। जगन्निवास प्रभु जिसके हृदय में विराजमान हैं उसके तिमिर का नाश कर देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे गुरुदेव! आप मेरी अभिलाषा को पूर्ण कीजिये और मेरे हृदय में विद्यमान हो जाइये।"

पद (६३)

उर में आनि बसे गुरु मेरे।
छिन-छिन दर्शन पाऊँ आली, आय गये अति नेरे।।
कैसी रैन, दिवस है कैसो, कैसे साँझ-सवेरे।
एकहु पल रीतो नहीं जावै, छवि देखे बिनु मेरे।।
स्वेद-कम्प-रोमाञ्च सुहानो, अश्रू बहत घनेरे।
हृदय-कँज में आनि लगे हैं, परमानँद के डेरे।।
उर उजियार भयो है ऐसो, छिन नहीं रहे अँधेरे।
सत को पथ अब सूझन लाग्यो, सुख के भये सवेरे।।
काम-क्रोध अरू मोह नसायो, तोड़े मद के घेरे।
'बिरजदास' गुरु पद बलिहारी, सकल विकार निवेरे।।

परम वन्दनीय श्रीगुरुजी महाराज मेरे हृदय में आकर बस गये हैं। अब तो मैं क्षण-क्षण दर्शन करता हूँ। क्या दिन क्या रात्रि एक पल भी रिक्त नहीं जाता है। आपने सर्व प्रेम लक्षण कृपाकर प्रदान कर दिये हैं। सत्य का मार्ग भली भांति समझ में आने लग गया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु चरणकमल की बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने सम्पूर्ण विकार नष्ट कर दिये हैं।"

पद (६४)

मैं तो मगन फिरूँ दिनराती।
कोऊ काल में छिन न अघाऊँ, सतगुरु के गुनगाती।।

स्रवन-सुरंग शब्द की रासी, प्रविस भई सब भाँती।
हृदय कोष में धरी भई है, श्रीगुरुवर की थाती।।
रवि-ससि-तारा-उडगन-बिजुरी, जहँ-तहँ दमक दिखाती।
मोरे उर उजियार भयो है, बिना तेल अरू बाती।।
कोई मरम समझ नहीं पावै, बात कहे मन भाती।
लोग कहैं मैं भई दुख्यारी, मैं डौलूं मुस्काती।।
'बिरजदास' जग नींत बावरी, नैंक समझ नहीं आती।
कोऊ कहै कुल तारनवारी, कोऊ कहै कुलघाती।।

मैं तो सदा सर्वदा मग्न रहता हूँ। गुरु गुणगान प्रतिक्षण करता हूँ, मेरे हृदय में उज्ज्वलता का प्रकाश बिना तेल और बाती के ही हो गया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "जगत की नीति मेरे समझ में नहीं आती है। लोग कहते हैं कि मैं दुःखी हूँ, किन्तु मेरे हृदय में आनन्द समुद्र वर्द्धित हो रहा है।"

पद (६५)

गीधराज सब खाईयो, मेरे तन को माँस।
दौ नैना मत खाइयो, गुरु मिलन की आस।।
नैंक हाड़ मत छोड़ियो, विनय करै 'ब्रजदास'।
दो नैना मत फोड़ियो, गुरु दरशन की आस।।
रूचि लै लै के जैमियो, सब विधि लीजौ स्वाद।
दो नैना तज दीजियो, सुन लीजौ फरियाद।।
सकल देह खा लीजियो, पूरण लीजौ धाप।
दो नैना रख लीजियो, पँखन नींचे ढाँप।।
चौंचन चमड़ी खींचियो, पंजा तरे दबाय।
दौ नैना मत भींचियो, नैंक ज्योत रह जाय।।
खींच-खींच लै जाईयो, सबरे तन को माँस।
दो नैना तज जाईयो, गुरु दरसन विस्वास।।
कठिन हाड़ सब तोड़ियो, चौंचन के आघात।
दो नैना मत फोड़ियो, आन मिलैंगे नाथ।।

सकल माँस ले जाईयो, निज कुटुम्ब के ग्रास।
दो नैना दे जाईयो, आस करै 'ब्रजदास'।।

हे गिद्धराज! तुम भले ही मेरे तन को ग्रसित कर लेना; किन्तु मेरे नेत्रों को मत खाना; क्योंकि इन्हीं से श्रीगुरु दर्शन की आशा करते रहता हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "मेरी यही प्रार्थना है कि सम्पूर्ण अंगों को ग्रसित कर लेने पर भी नेत्रों को तो छोड़ देना इन्हीं से पूज्यपाद गुरुदेव के दर्शन करता रहूँगा; यही ब्रजदास की अभिलाषा है।"

पद (६६)

गुरु को ऋण न चुकै कछु कीन्हे।
कहा होत तन-मन अर्पे ते, कहा होत धन दीन्हे।।
ज्ञानी-गुनी-चतुर सब हारे, बहु साधन जिन कीन्हे।
केवल गुरु-कृपा ते तर गये, कोटि दास गुनहीने।।
आगम-निगम-सन्त-सुर सारे, घोष ऐक स्वर दीन्हे।
गुरु-आशीष अमोघ जगत में, काज होत बिनु कीन्हे।।
कहा भयो सुर-नर जो गुरुपद, अपने शीश घर लीन्हे।
गुरु के पद तो ऐसे पावन, पूजे स्वयं हरी ने।।
धर्म-अर्थ अरू काम मोक्ष सब, मिलत बिना ही दीन्हे।
गुरु-सेवा जिन ने कर लीन्ही, सकल काज कर लीन्हे।।
मात-पिता-माया भरमायो, सुकृत सारे छीने।
'बिरजदास' गुरु की बलिहारी, राम मिले रंग भीने।।

श्रीगुरुदेव का ऋण कभी-भी शोधन नहीं हो सकता है। तन-मन अर्पण करने पर भी गुरु ऋण से उऋण नहीं हो सकते। जो ज्ञानी गुणवान अनेक साधन करने पर भी थकित हो जाते हैं वे केवल गुरु कृपा से ही तर जाते हैं। आगम-निगम संत देव एक ही उद्घोष कर रहे हैं कि श्रीगुरुदेव के आशीर्वाद से जगत में कौनसा कार्य सिद्ध नहीं होता है? पुरुषार्थ चतुष्ट्य श्रीगुरुकृपा से सहज ही प्राप्त हो जाता है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "मैं तो श्रीगुरुदेव के बलिहारी जाता हूँ जिन्होंने मुझे श्रीहरि के रंग में रंग दिया है।"

पद (६७)

अष्ट दोहावली-2

ढूंढि ढूंढि के थक चुके, तीन लोक के माँय।
सकल भुवन हम फिर लिये, कोई गुरु सौं नाँय।।
कौन नदी सरवर किसो, कौन घाट पे जाँय।
अड़सठ तीरथ बस रहे, एक गुरु के माँय।।
संत-पंथ सूझै नहीं, कर्मन-बोझा लाँय।
'बिरजदास' गुरु के बिना, पुनि-पुनि जग में आँय।।
कछु बने ना वा घरी, जब प्राण कण्ठ में आँय।
गुरु चरनन अवलम्ब है, और सहारो नाँय।।
सगे सम्बन्धी मीत सब, देखत ही भग जाँय।
अन्त समै में हे सखा, गुरु लिवाने आँय।।
विधि-निषेध मानै नहीं, गुरु शरण नहीं आँय।
उन मूढ़न कूँ रे मना, कौन भाँति समझाँय।।
जीव जगत के बापरे, जित माया तित जाँय।
'बिरजदास' वे धन्य हैं, जे गुरु के गुन गाँय।।

हम तो जगत में ढूँढ़-ढूँढ़ कर थकित हो चुके हैं; किन्तु श्रील गुरुदेव जैसा परम दयालु हमने कहीं नहीं देखा। सम्पूर्ण तीर्थ श्रीगुरुदेव में ही विद्यमान हैं। श्रीगुरुदेव के बिना इस जगत में जीव का आवागमन बना ही रहता है।

अब तो श्रीगुरु के चरणकमलों का ही एकमात्र भरोसा है और कोई जगत में सहारा नहीं है। सब सम्बन्धी मैंने देख लिये हैं वे देखते ही भाग जाते हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "वे ही लोग धन्य हैं जो सदैव श्रीगुरुदेव का गुणानुवाद गाते हैं।"

पद (६८)

रचना

गुरुवर तुमरे भेद नहीं... कृपाकर... ऋषिवर
जो जन सब ते पीछे बैठ्यो, ताको सबसे पहले देख्यो।।
धनिक जनन इक ओर रखाये, कंगालन ले कण्ठ लगाये,
रह गये पेच-कलंगी बारे, दीनहीन को पहले पूछ्यो।।
कौन निकट अरू दूर कौन है, को स्वतन्त्र मजबूर कौन है,
अन्तर ही में जान गये तुम, कौन मन्यो और कैसे रूठ्यो।।
कौन सो ज्ञान-ध्यान वो पाये, बर्तन माँज गुरू कहलाये,
देखत रहे ठगे से सारे, रामदास गुरुगद्दी बैठ्यो।।
रच-रच कौतुक रस बरसायो, दास जनन को मान बढ़ायो,
अपनो मान कबहु नहीं राख्यो, खुद हारे अरू सेवक जीत्यो।।
ठग-ठाकर में भेद न लाये, दोनों एक ठौर बैठाये,
'बिरजदास' का महिमा कहिये, गुरु सम कोऊ धीर न देख्यो।।

हे गुरुदेव! आपके किञ्चित् भी भेद नहीं है। जो जन सबसे पीछे बैठे हुए हैं उन्हीं को आप सबसे पहले देखते हो। धनिकों को आप एक ओर बैठाते हो और पहले कंगालों को गले से लगाते हो- ऐसी आपकी महान् उदारता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "हमने पूज्य गुरुदेव के समान उदार, धैर्यवान् और प्रेमी नहीं देखा है।"

पद (६९)

मेरे गुरु बाबा मुस्काये।
सकल सभा में आज अचानक, मेरी ओर लखाये।।
मन्द हँसन अधरन पै सोहे, निरखत मन हर्षाये।
कहा कहूँ दन्तन की शोभा, हंसन झुण्ड लजाये।।
कापै शोभा बरणी जावै, कन्धन पै बिखराये।
घूँघर वारे हेमप्रभायुत, श्वेत केश लहराये।।
सुन्दर वसन सुहानो बानो, कण्ठी-तिलक सुहाये।

सहज सुखासन बैठे गुरुवर, प्रेमिन चित्त चुराये।।
छवि निरखत कैसी भई सजनी, मुख सौं कही न जाये।
क्रीतदास 'ब्रजदास' भये सब, उर आनन्द समाये।।

मेरे गुरुदेव सदा सर्वदा मंद-मंद हास्य करते हैं। सकल सभा में अकस्मात् मेरी ओर निहारकर देखे हैं। मुख की शोभा क्या कहूँ? हंसों के समूह भी इनके सम्मुख लज्जित हो जाते हैं। आपका सुन्दर परिधान सबको आकर्षित करता है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु दर्शन करके हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है।"

पद (७०)

गुरुवर अति उपकार तुम्हारे।
दासन काज खोलकर बैठे, कृपा-कोष के द्वारे।।
बिनु सेवा ही द्रवित भये तुम, अनन्त जीव उद्धारे।
कोटिन जीव केश गहि काढ़े, बहे जात मझधारे।।
नाम निधि जा दिन ते दीन्ही, मिटे अमंगल सारे।
दोनों हाथ लुटाई करूणा, रस के बहे पनारे।।
काल क्रूर ऐसो छल कीन्हो, माया के बस डारे।
दया लागि तुम ऐसी कीन्हीं, भवसागर ते तारे।।
जा दिन गुरुवर करूणा करके, मेरी ओर निहारे।
ता दिन ते 'ब्रजदास' अभय पद, पाय लियो रे प्यारे।।

हे गुरुदेव! आपका हमारे ऊपर अत्यन्त उपकार है। आप तो बिना सेवा के ही रीझ जाते हैं। कोटि-कोटि जीवों को पकड़कर मझधार में डूबने से बचा लेते हैं। आपने जिस दिन से हरिनाम रूपी निधि प्रदान की है उस दिन से सम्पूर्ण अमंगलों को नष्ट कर दिया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु महाराज ने दोनों हाथों से करूणा की रसधारा को बहाकर मुझे तृप्त कर दिया है।"

पद (७१)

गुरु बिन ऐसी कौन करै।
कोटि जनम को कर्मन-बोझा, अपने सीस धरै।।
पलट जात यम के सब नीयम, तृण सम पाप जरै।
कठिन कुअँक जरावै छिन में, सब अपराध हरै।।
कलि कराल कछु कर नहीं पावै, गुरुमुख छुअत डरै।
धरी रहै सारी कुटिलाई, आयो काल टरै।।
धाम जाय कै पुनि नहीं आवै, जननी जठर टरै।
गुरु प्यारो या कठिन जगत में, एकहि बार मरै।।
छुड़ा लेत गुरु कठिन पाश ते, निज घर लाय धरै।
'बिरजदास' अपने जन काजे, जम ते जाय लरै।।

गुरुजी के बिना ऐसा कौन कर सकता है? कोटि जन्मों के कर्म भोग को हम अपने शीश पर ढोते आ रहे हैं। किन्तु आपने तो कृपा करके सहज में ही नष्ट कर दिया है। अब मैं सर्व भार मुक्त हो गया हूँ। कठिन कराल काल की भी कोई कुटिलता मुझ पर नहीं चल पा रही है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव अपने सेवक के लिये यम से भी लड़ जाते हैं।"

पद (७२)

गुरु तुम हरि तैं अधिक कियो।
हरि नै चौरासी में डार्‌यो, तुमने काढ़ि लियो।।
कर्म-हलाहल अपने जन को, अपने कण्ठ लियो।
अमृत पान दास नै कीन्हों, तुमने गरल पियो।।
कृपा-सुई में करूणा-धागो, झट सौं डार लियो।
गहरो घाव आपने जन को, अपने हाथ सिंयो।।
खण्ड-खण्ड यमदण्ड भयो है, नैंक न काम कियो।
हरि-विधान काहू नहीं पलट्‌यो, तुमने पलट दियौ।।
जनम-जनम के मन-कागा कूँ, छिन में हंस कियो।
'बिरजदास' से निपट रंक के, माथे छत्र दियो।।

हे गुरुदेव! आपने श्रीहरि से भी अधिक हम पर कृपा की है। आपने हमको श्रीकण्ठ से लगाया है और अमृत पान कराया है। आपने कृपा-करूणा के द्वारा मेरे समस्त दुःख का नाश किया है। हरि का विधान किसी पर भी नहीं पलट सकता है; किन्तु आपने वह भी पलट दिया है और मुझे कर्म बन्धनों से मुक्त कर दिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "आपने मुझ जैसे रंक के मस्तक पर भी राजाओं का छत्र धारण करा दिया है।"

पद (७३)

गुरु बिन का को काज सर्‌यो।
कौन थाह लई भव जल की, निज बल कौन तर्‌यो।।
काहू दिन पतझर नहीं आयो, ऐक न पात झर्‌यो।
गुरु-तरुवर की छाँह घनेरी, निशदिन रहत हर्‌यो।।
गुरु बिन ज्ञान काहु नहीं पायो, काहु न जीव तर्‌यो।
सुर-नर-मुनिजन-संत-औलिया, सब ही गुरु कर्‌यो।।
अघ-घट रीतो कबहु न होतो, रहतो सदा भर्‌यो।
जे गुरू तत्व न होतो जग में, जातो जगत जर्‌यो।।
'बिरजदास' परमारथ के पथ, अस उजियार कर्‌यो।
गुरु-आदित्य होय उर बैठे, मन को तिमिर हर्‌यो।।

श्रीगुरुदेव के बिना किसका कार्य सिद्ध हो सकता है? इस भवसागर के थाह किसको पायी है? श्रीगुरु रूपी कल्पवृक्ष छांव में बैठिये श्रीगुरुदेव के बिना किसी को भी न तो विवेक हो सकता है न ही उद्धार हो सकता है। सुर-नर-मुनि-संत सबका हित गुरु-तत्त्व ही करता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुरूपी तत्त्व जब हृदय में विद्यमान हो जाते हैं तब मन का अन्धकार मिट जाता है।"

पद (७४)

गुरु बिन कैसे उतरै पार।
बिन खेवैया नैया कैसी, सुर बिन कैसे तार।।

बिन छैंया के तरूवर कैसो, तरू बिनु कहा पहार।
बिन पानी के नदिया कैसी, नर बिन कैसी नार।।
साँच बिना के सज्जन कैसो, मज्जन बिन जलधार।
बिन करूणा के माता कैसी, पितु बिन नेह अपार।।
बिन भुजंग चन्दन तरू कैसो, बिन पातन के डार।
बिन सुगन्ध के वायु कैसो, बिन पुहुपन के हार।।
बिन माला के सुमिरन कैसो, बिन चिन्तन करतार।
बिन हरिनाम साधना कैसी, जप बिन अँसुवा धार।।
बिना रात के तारे कैसे, बात बिना आधार।
बिना भाव के भगती कैसी, ब्रह्म बिना आकार।।
गुरु बिन ज्ञान ज्ञान बिन मुक्ति, मुक्ति बिन भव पार।
'बिरजदास' ऐते पाये भी, प्रेम बिना सब भार।।

श्रीगुरु महाराज के बिना कौन उद्धार कर सकता है? बिना केवट के नाव कैसी? और बिना छांव के वृक्ष कैसा? बिना जल के नदी कैसी? और बिना सत्य के सज्जन कैसा? बिना करूणा के माता कैसी? बिना माला के सुमिरन कैसा? और बिना हरिनाम के साधन कैसा? बिना रात्रि के तारे कैसे? और बिना भाव के भक्ति कैसी? इसी प्रकार बिना गुरु के ज्ञान कैसा? ब्रजदासजी कहते हैं- "प्रेम के बिना सबकुछ भार के समान है।"

पद (७५)

गुरु बिन जग अँधियारो छाय।
गुरु बिन जोग-जुगत सब फीके, जतन अकारथ जाय।।
गुरु बिन सिंह स्वान सौ लागै, गज मूषक हो जाय।
गुरु बिन गरुड़ ब्याल से डरि है, उलटे पैरन धाय।।
गुरु बिन धेनु छेरी जैसी, कब लौं भेद छुपाय।
गुरु बिन क्षीर नीर के जैसो, हंस काग हो जाय।।
गुरु बिन कहा काम बन जईये, छिनहु न मन ठहराय।

गुरु बिन गंग संग सब फीको, तीरथ कहा नहाय।।
गुरु बिन राग-फाग सब झूठे, 'बिरजदास' का गाय।
गुरु बिन सुमति कुमति की जैसी, कछु काम नहीं आय।।

श्रीगुरु के बिना जगत् में अन्धकार-सा छा जाता है। गुरु के बिना योग-युक्ति सब कठिन है। गुरु के बिना सिंह श्वान के समान लगता है और गज मूषक जैसा हो जाता है। गुरु के बिना कौन-सा कार्य बन पायेगा?

ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु बिना सुमति भी कुमति हो जाती है वह भी कोई कार्य में नहीं आती है।"

पद (७६)

का दिन जियो गुरु के हेत।
हीरा जनम हरि नै दीन्हों, तू कर लीन्हों रेत।।
गंगाजल तजि पियो कूपजल, रवि तज चीन्हों केत।
चन्दन तजि गह्यो कनकद्रूम, गुरु तजि पूज्यो प्रेत।।
प्रबल रुचि ते पियो विषै-विष, भूल्यो कृपा निकेत।
जग के हेत चेत बहू कीन्हों, गुरु हित भयो अचेत।।
कवन विधि ते होतो तारन, का विधि होतो हेत।
भवसागर पै कबहूँ न बाँध्यो, गुरु करूणा को सेत।।
'बिरजदास' गुरु बिन उर सूनो, ज्यों बरखा बिन खेत।
रे मतिमन्द जनम खो दीन्हों, डूब्यो कुटँब समेत।।

गुरु के बिना जीवन कोई जीवन नहीं है। गंगाजल को तजकर तालाब का जल चाहता है। गुरु को छोड़कर जगत् को पूछता है। विषयों की प्रबल रूचि से पुनः कृपा निकेतन गुरुदेव को भुला दिया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "जैसे वर्षा के बिना कृषि होती है उसी प्रकार मति मंद मन ये समझ ले गुरुदेव के बिना जीवन भी निष्फल हो जाता है।"

पद (७७)

गुरुवर इतनो नेह कियो।
ढ़र ढ़र जात प्रेम के अँसुवा, हुलसे जात हियो।।
जनम अनेक बिगारे सजनी, नैंक न चैन लियो।
नीर पियत कोटी जुग बीते, अबके प्रेम पियो।।
छाँड़ि चले सब अपने स्वारथ, आरत त्याग दियो।
सतगुरु चरन कमल बलिहारी, साँचो साथ लियो।।
क्रूर जगत कुटिलाई कीन्ही, दारूण दुक्ख दियो।
गुरु नै करूणा-मरहम दैके, गहरो घाव सिंयो।।
पचि-पचि मर्‌यो जगत के काजे, अपजस मोल लियो।
'बिरजदास' साँचे अरथों में, अबकी बार जियो।।

श्रीगुरुदेव ने इतना प्रेम किया है कि उन्होंने अनेक जन्मों की बिगड़ी को बना दिया है। अब जाकर प्रेम प्राप्ति का सौभाग्य सुलभ हुआ है। सब स्वार्थी मुझे छोड़कर चले गये। किन्तु गुरुदेव ने ही सच्चा साथ दिया है। क्रूर जगत ने कुटिलता व दुःख दिया है; किन्तु गुरुदेव ही एक ऐसे हैं जिन्होंने करूणाकर गहरे घावों को भी ठीक कर दिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "सच्चे अर्थों में कहा जाये तो अबकी बार ही जीवन जिया हूँ।"

पद (७८)

गुरु ने जड़ता हर लीन्हीं।
मन के बीच निकास मूढ़ता, दृढ़ता धर दीन्हीं।।
जग के सब सम्बन्ध धोय के, बैठा अटल निशंक होय के,
मैं-मेरा का मान मिटाकर, ममता ही लीन्हीं।।
चरनन के नींचे छिप जाऊँ, माया के अब हाथ न आऊँ,
गिरा अहम् को गिरि, अणु सी लघुता कर दीन्हीं।।
लुटने में मन सुख पावत है, झुकने में आनँद आवत है,
सब विधि मोहे दीन बना के, नमता भर दीन्हीं।।

स्वारथ भाव हृदय ते भाग्यो, 'बिरजदास' सब के हित लाग्यो,
अपनो कौन परायो कैसो, समता धर दीन्हीं।।
एक विमुख सम्मुख कर दीन्हो, शुष्क हियो रस ते भर दीन्हो,
ठाकुरजी सौं प्रेम करन की, क्षमता कर दीन्हीं।।

श्रीगुरु दयालु ने कृपा कर मेरी समस्त अज्ञानता को विनष्ट कर दिया है। मन में से मूर्खता को निर्गत कर दृढ़ता को स्थापित कर दिया है। जगत के सर्व सम्बन्धों को परिष्कृत कर निश्चितवान बना दिया है। अब मैं माया के हाथ में नहीं आऊँगा। अब मुझे दीनता और भाव में आनन्द आता है। अपना कौन पराया कौन यह भेद भुला दिया है?

ब्रजदासजी कहते हैं- "परम वन्दनीय गुरुदेव ने ठाकुरजी से प्रेम करने की क्षमता प्रदान कर दी है।"

पद (७६)

गुरु ने अन्तर के रिपु मारे।
दासन हित शत्रूघन बनि के, शत्रूजन सब जारे।।
जप-तप-संजम जोग-समाधी, जीति लिये गुन सारे।
वीरन में गुरु बीर अनोखे, धीरन में गुरु न्यारे।।
कृपा-गदा की चोट लगाई, भीषण शब्द उचारे।
कोटि जनम की कर्म-शिला के, टूक-टूक कर डारे।।
राम के बाण चक्र गोविन्द के, शिव त्रिशूल ते खारे।
परसराम के परस भये हैं, काटे बन्धन सारे।।
आय गये अपने जन के ढिंग, लीन्हें दीन उबारे।
'बिरजदास' गुरु निकट रूप धरि, यम के दूत पछारे।।

श्रीगुरुदेव ने कृपा कर मन शत्रु को मार दिया है। अब तक संयम योग समाधि से जो कार्य नहीं बना वह पूज्य गुरुदेव ने अपनी कृपारूपी गदा से चोट चलाकर विवेक को उत्पन्न कर दिया है। कोटि जन्मों के कर्म शिला के खण्ड-खण्ड कर दिये हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "दयालु गुरुदेव ने अपनी परम दया कर दी है।"

पद (८०)

गुरु ने दीनन के दिन फेरे।
सुमिरन साँझ, भजन की रैना, सत के भये सवेरे।।
पंचम पुरषारथ समझा के, उर के हरे अँधेरे।
प्रेम-पंथ को पथिक कियो है, पदपावन के नेरे।।
मन में मोद भर्‌यो अति भारी, भाग जगे हैं मेरे।
हृदय-कुँज में आन भये हैं, प्रेमानन्द के डेरे।।
हटे हटीले काम-क्रोध-मद, घटे पाप के चेरे।
कटे कोटि कर्मन के बन्धन, मिटे जगत के फेरे।।
सबि विधि मुक्त कियो गुरुवर नै, काल थक्यो कर हेरे।
अब ऐसो कोई बीर नहीं जो, 'बिरजादास' को घेरे।।

गुरुदेव ने कृपा से सब बदल दिया है। अब सुमिरन की संध्या है। प्रेमरूपी प्रसाद समझकर हृदय के अन्धकार को मिटाइये। गुरुदेव ने मुझे प्रेम पथ का पथिक बना दिया है। काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को दूर कर दिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरुदेव ने सब प्रकार से मुक्त कर दिया है। अब ऐसा कोई वीर नहीं है जो वश में कर सके?"

पद (८१)

दरस बिन नैनन ज्योति चली।
गुरुवर वेग संभारो आकै, जीवन साँझ ढ़ली।।
विरहा जार रह्‌यो है तन कूँ, सुख नहीं एक घड़ी।
रो रो नैन गुफा बन बैठे, सूझत नाहीं गली।।
जीवन रतिया चुकती जावै, ज्यों मुरझात कली।
थोड़ी रैन रही है अब तो, आसहू जात टली।।
तुम समरथ सारे गुन साँचे, कीजो नाथ भली।
एक निबल कूँ दरसन दीजौ, श्रीगुरुदेव बली।।

का 'ब्रजदास' दरस बिनु रहि है, अँखियां जात जली।
नैंक हि ज्योत रही है अब तो, बाँफनियां हू गली।।

दर्शन के बिना नयनों की ज्योति चली गई है। हे गुरुदेव! आप कृपा करके मुझे संभालिये। अब जीवन की संध्या आ गई है आप सर्व सद्‌गुणों की खान हो, मुझे अपना दास बना लीजिये। ब्रजदासजी कहते हैं- "दर्शन के बिना नेत्र जले जा रहे हैं।"

पद (८२)

सुनियो गुरुदेव गरीबन की।
दीन-दुःखी सब टेर रहे हैं, सुधि लीजौ भटके जन की।।
हीरे-मोती-माणक-पन्ना, कछु चाह नहीं है लालन की।
इक चाह कृपा-करूणा की है, कछु चाह नहीं जग के धन की।।
जब जीभ पै नाम नहीं आवै, शोभा न बढ़ै कोउ आनन की।
गुरुनाम बिना कबहू न मिटै, इहिं भाल लिखी चतुरानन की।।
अपने बल तै पचि पचि हारे, कबहू न थी कछु साधन की।
गुरुदेव तिहारी सैन बिना, केहि भाँति बनै कोई जन की।।
कोई लाख प्रगाढ़ प्रयास करै, कोई लाख करै अपने मन की।
'ब्रजदास' गुरु की करूणा बिन, कब गैल मिलै वृन्दावन की।।

हे गुरुदेव! हम जैसे गरीबों की-भी सुनिये, हम तो सब दिन ही दुःखी रहते हैं। हीरे-मोती, मणि-पन्ना इत्यादि की कोई लालसा नहीं है। एकमात्र आपकी करूणा की ही लालसा है। मैं सर्वदा हरिनाम जपता रहूँ- यह लालसा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "आपकी कृपा के बिना वृन्दावन जाने का मार्ग नहीं खुलता।"

पद (८३)

सुन रे लम्बी भुजाओं वारे।
दूर परयो इक दीन पुकारत, सुन गुरुवर मतवारे।।
तुम बिने साधकजन के पथ में, कौन करे उजियारे।

हे तमारि आके हर लीजौ, अन्तर के अँधियारे।।
कर बढ़ाय के बाँह पकरियो, दीजौ सबल सहारे।
हे अजानबाहू झट खींचो, डूबत हूँ मझधारे।।
या विवेक ते हीन जगत में, गुरु बिन कौन सँभारे।
गुरु बिन कौन दीन कूँ राखै, कौन पतित उद्धारे।।
बीच भँवर में फँसी जात है, सूझत नाहिं किनारे।
'बिरजदास' भव जल ते नैया, गुरु बिन कौन निकारे।।

हे गुरुदेव! एक दीन पुकार रहा है आप कृपा कर आ जाइये। आपके बिना इस सेवक के जीवन में उजाला कौन कर सकता है? आप हृदय के अन्धकार को हर लीजिये। निज करकमल बढ़ाकर इस दास को सहारा दीजिये। दीन-जनों को गुरुदेव के बिना कोई रख ही नहीं सकता। ब्रजदासजी कहते हैं- "भव जल में पड़ी हुई नाव को गुरुदेव के बिना कौन निकाल सकता है?"

पद (८४)

गुरु को ध्यान करो रे भाई।
हृदय कमल गुरुदेव विराजत, शोभा कही न जाई।।
ऐक हाथ वर मुद्रा सोहत, दूजे ग्रंथ सुहाई।
द्विभुज-दिव्य मूरति गुरु की, सब जग लेत लुभाई।।
शुभ्र वसन धारत उज्ज्वल तन, श्वेत कमल सुखदाई।
श्वेत केश गंगा से लहरत, केहरि-कन्ध सुहाई।।
नित्य शुद्ध-निर्लेप-निरञ्जन, निजानन्द नित छाई।
आत्मशक्ति बामांग बिराजै, शुद्ध-सत्त्व-सुखदाई।।
अणु ते अज लौं सकल जगत में, गुरु को तत्त्व समाई।
'बिरजदास' नित बलि-बलि जईये, बेदन महिमा गाई।।

हे भ्राता! श्रीगुरुदेव के चरणकमलों का ध्यान कीजिये। पूज्य गुरुदेव की शोभा का वर्णन नहीं हो सकता है। एक हाथ वरद मुद्रा से शोभित है और दूसरे हाथ में ग्रंथ सुशोभित हो

रहा है। सुन्दर श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं। विशुद्ध भगवत् सेवा आनन्द में मत्त हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के श्रीचरणों की बलिहारी जाता हूँ, वेद भी गुरु-तत्त्व महिमा का गुणगान गा रहे हैं।"

पद (८५)

करिये श्रीगुरुपद को ध्यान।
बहिये भाव-सलिल-धारा में, गईये मंगल गान।।
लागि रहो निशिवासर मितवा, त्यागि रहो निज मान।
गुरु पद भवतारण की नौका, रे मन लीज्यो जान।।
धरिये छिन-छिन ध्यान प्रेम सौं, करिये नित गुन गान।
जे-जे गुरु चरनन ते लागे, चढ़ि-चढ़ि चले विमान।।
योगी-यति-रसिक झानीजन, तजि अपनो अभिमान।
परिस-परसि गुरु के पद पंकज, पावत पद निर्वान।।
जे चाहत अनुभव आनँद को, जे चाहत कल्यान।
'बिरजदास' लागे ही रहियो, गुरु हरिरस की खान।।

श्रीगुरुदेव के चरणकमलों का ध्यान कीजिये। भाव-भक्ति की धारा में रहकर श्रीगुरु चरणकमल चिन्तन में मग्न रहिये। पूज्य गुरुदेव के चरण चिन्तन में जो लग हुये हैं वे विवेकरूपी विमान में चढ़कर चले जाते हैं। योग-यति, रसिक-ज्ञानी सभी अभिमान त्याग गुरु चरणकमलों से युक्त हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव के चरणकमलों से सदैव लगे रहो।"

पद (८६)

गुरुवर करूणा रूप तिहारो।
क्रूर करूण हो जावै छिन में, सरस नैन ते जाहि निहारो।।
वाको चित चिन्तन में लागै, निरखि रहै नैनन ते प्यारो।
अपनी हित-करूणा की दृष्टि, भूले ते भी जापै डारो।।
कोरे कागज सो कर दीन्हों, उर के बीच भयो उजियारो।

का जाने का दिन हर लीन्हों, कुटिल हिया को कल्मष कारो।।
बिनु कीन्हें सब कुछ कर लीन्हों, बिनु लीन्हें सुख भारो।
जाने समझ लियो या जग में, गुरु नैनन को मूक ईशारो।।
गुरु चरनन की ओट हमारे, सबल भुजा को प्रबल सहारो।
'बिरजदास' निर्भय पद पायो, कहा करै वह काल बिचारो।।

हे गुरुदेव! आपका स्वरूप करूणामय है। क्रूर व्यक्ति भी आपकी कृपा से सरल हो जाता है उसका चित्त हरि-चिन्तन में लग जाता है। हृदय की कुटिलता और कल्मषता का नाश हो जाता है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "आपकी कृपा से निर्भय पद प्राप्त हो जाता है।"

पद (८७)

गुरुवर साँची सीख तिहारी।
माननहार सदा ही जीतै, अनमाने की हार सदा री।।
जो उपदेश हिये घर लेवै, वा साधक की बात कहा री।
हीन-मति, मतिवान कहावै, ऐबी गुन की खान महारी।।
गुरु के वचन तीर के जैसे, कठिन हिया में जाय चुभारी।
जानै शबद बाण सह लीन्हे, ताके उर आनन्द भया री।।
जो साधक डगमग नहीं होवै, बचनन बरछी खाय खड़ा री।
ताको हित निश्चय करि मानो, जाने गुरु को कोप सहारी।।
कौन बिगार करै अब मेरो, उर छायो विस्वास महा री।
गुरु की कहन हिये धर लीनी, 'बिरजदास' अब सोच कहारी।।

हे गुरुदेव! आपके श्रीमुख निसृत शिक्षा परम सत्य है। उसको मानने वाला सदा विजयी रहता है और न मानने वाला पराजित हो जाता है- ऐसा आपके वचनामृत का प्रभाव है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "हृदय में महा विश्वास उत्पन्न हो गया है। अब तो श्रीगुरुदेव के उपदेश को ही मैं हृदय में धारण करता हूँ।"

पद (८८)

गुरु तुम साँचे मीत हमारे।
काम नसावन, दाम छुरावन, राम मिलावन हारे।।
हर लीन्हों अज्ञान-तिमिर को, उर बिच भये उजारे।
चुनि-चुनि चोर निकारे घर ते, सब विधि भये सुखारे।।
अपनो जन निर्दोष बनावत, दोष मिटावन हारे।
दोनों हाथ कृपा-करूणा को, कोष लुटावन वारे।।
का मुख महिमा गाई जावै, शेष शारदा हारे।
भरम मिटावन, धरम सिखावन, करम कटावन वारे।।
बाँह गही छोड़ी नहीं कबहू, दीन्हे सबल सहारे।
'बिरजदास' रसिकन रखवारे, प्रेमिन प्राण अधारे।।

हे गुरुदेव! आप ही हमारे सच्चे हितैषी हैं, श्रीहरि से मिलाने वाले हैं। आपने अज्ञान तिमिर को नष्ट कर काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को मेरे हृदय से निकाल दिया है। आपकी महिमा को मैं किस मुख से गाऊँ? गुरु-तत्त्व की महिमा का वर्णन करते हुए शेष और सारदा भी हार जाते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "आप रसिकजनों के रक्षक और प्रेमियों के प्राणाधार हो।"

पद (८९)

जाकी प्रीत गुरु संग नाहीं।
ताहि निकास फैंकिये छिन में, चाहे बसै उर माहीं।।
परिजन-निजजन कोई जन हो, तजिये पाप की नाँई।
गुरुद्रोही सौं बचिये भाई, तन न परै परछाँई।।
कमलनैन कजरारे नैना, नींकी जिनकी झाँई।
तद्यपि उनको कहा कीजिये, जिनमें सतगुरु नाहीं।।
बिन गुरु के सब ज्ञान अधूरो, जद्यपि जगत सराहीं।
उन नदियन को कहा लाभ है, जिनमें गंगा नाहीं।।
'बिरजदास' चित चेत राखिये, हेत समझ मन माहीं।
गुरु विमुखन को मुख न देखिये, चाहे सन्मुख आहीं।।

जिस मनुष्य की गुरुचरणों में प्रीति नहीं है, उसको क्षणमात्र में हृदय से निकाल देना चाहिये; चाहे वह निज कुटुम्बी व परिवारीजन ही क्यों न हो? गुरु विमुख व्यक्ति से सदैव बचकर रहना चाहिये उसकी छाया भी तन पर नहीं पड़नी चाहिये। चाहे वह कितना भी धन-सौन्दर्य-ऐश्वर्यवान क्यों न हो? ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु विमुख लोगों का मुख न कभी देखना चाहिये; न कभी संग करना चाहिये।"

पद (६०)

रचना

भक्ति भवन, गुरुदेव दयामय,
करूणा सदन, कारुण्य कृपामय,
तन कञ्चन तो, मन अति पावन,
दरस-परस है, चित्त लुभावन,
सरस-सरल, सानन्द-सुधामय।।
तत्त्व स्वरूपी, काया तुम्हरी,
अति कल्याणी, माया तुम्हरी,
सगुन-निगुन, सतरूप प्रभामय।।
तत्त्व रूप निज, रूप लखाये,
कण-कण में, गुरुदेव समाये,
अगुन-अनीह, अरूप-अनामय।।
तुम्हरी कृपा, गागर होई सागर,
करऊ नाथ निज, विरद उजागर,
बस करि राखत, सकल भयाभय।
एक आस, विश्वास दीजियो,
'बिरजदास' निज, दास कीजियो,
चरन कमल को, दीजै आश्रय।।

परम आदरणीय गुरुदेव भक्ति के भवन हैं, करूणा के सदन हैं और अत्यन्त पावन हैं। अपने दर्शन मात्र से सबका

चित्त हरण कर लेते हैं। सर्वदा अमृत-धारा का आनन्द बरसाते हैं। यह अमृत-धारा जिस पर वर्षित होती है, उसके हृदयरूपी गागर में श्रीराधामाधव सेवा रस का भण्डार भर जाता है। ब्रजदासजी कहते हैं- "हे परम दयालु गुरुदेव! आप अपने श्रीचरणारविन्द का आश्रय प्रदान कीजिये।"

पद (६१)

जग में गुरु गरिमा अतिभारी।
राजा-जोगी-संत-औलिया, ठाड़े हाथ पसारी।।
कर बढ़ाय पल में गह लेवत, गहरे समँद मँझारी।
केश पकरि काढ़त भव जल ते, छिन में लेत उबारी।।
जग के बन्धन काटि छिनक में, कर डारत सुख भारी।
अपनी चरन-शरन में लेवत, देवत जनम सुधारी।।
तत्व स्वरूपी काया धारत, दीखत नर तनु धारी।
सत चित् आनँददघन स्वरूप है, सकल बिधी सुखकारी।।
सकल देव किंकर है ठाड़े, जय-जय शब्द उचारी।
'बिरजदास' विधि-हरि कर जोरत, पद पूजत त्रिपुरारी।।

जगत में श्रीगुरु की गरिमा अत्यन्त भारी है। राजा, योगी, संत सभी बाहु पसार की गुरु के सम्मुख खड़े रहते हैं। गुरुदेव तो जगत के सकल द्वन्दों को काटकर निज शरण में स्थान प्रदान करते हैं और मनुष्य का जीवन सुधार देते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "विधि, शिव, हरि श्रीगुरु-तत्त्व का गुणगान गाते हैं।"

पद (६२)

जगत में कोऊ न गुरु समान।
वेदादिक थाके गुन गाके, कासौं होत बखान।।
श्रीगुरुवर मुदमंगल दाता, सकल शकुन की खान।
कोटि गुनत-आगार कहावत, अद्‌भुत शील-सुजान।।
गुरु चरनन को परम आसरो, रेमन लीजो मान।

हरि रूठे तो ठौर घनेरी, गुरु रूठे नहीं थान।।
मंगल मूरति श्रीगुरुवर की, मंगल सकल विधान।
रे चातक मन सदा कीजियो, गुरु चरनन को ध्यान।।
जे चाहत उत्तम गति अपनी, जे चाहत कल्यान।
'बिरजदास' गुरु ओर राखियो, अपनो सदा रुझान।।

जगत में कोई भी गुरु के समान नहीं है। वेद भी गुरु-तत्त्व गुणानुवाद गाते हुये थकित हो जाते हैं। श्रीगुरु चरण का ही परम आश्रय लेना चाहिये। श्रीगुरुदेव का विग्रह अत्यन्त मंगल मूर्ति है। अतः हे मन! तू सदैव श्रीगुरु पदारविन्द का ध्यान करता रह। ब्रजदासजी कहते हैं- "अपनी मनोवृत्ति सदैव श्रीगुरु चरणारविन्द की ओर रखनी चाहिये।"

पद (६३)

गोविन्द अति उदार गुरु मेरे।
निकट आय हर लीन्हे सारे, उर के विकट अँधेरे।।
कोर दिये चित राम अनूठे, गुरुवर चतुर चितेरे।
हृदय-पटल पै अपने कर ते, हरि के नाम उकेरे।।
मन चित् बुधि अरू अहम् विमल करि, कर दीन्हें हरि नेरे।
सकल भाँति मोहि अनघ बनायो, कलुषित कर्म निवेरे।।
अजलौं काम-क्रोध बैठे थे, हृदय प्रान्त को घेरे।
वा ठौरन अब लगे भये हैं, शील-सनेह के डेरे।।
जनम-मरण के बन्धन काटे, भागे यम के चेरे।
'बिरजदास' अब मिटे जानियो, चौरासी के फेरे।।

हे गोविन्द! मेरे गुरुदेव अति उदार हैं। उन्होंने निकट आकर सम्पूर्ण अन्धकार को मिटा दिया है और हृदय पटल पर हरिनाम अंकित कर दिया है। विमल बुद्धि प्रदान कर कलुषित कर्मों को विनष्ट कर दिया है। अब तक जो काम, क्रोध इत्यादि जो बैठे हुये थे उनको शांत कर दिया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "मेरे तो चौरासी लाख योनियों के फंद ही मिटा दिये हैं।"

पद (६४)

जगत में गुरु सम कौन उदार।
अपने सम कर लेत जीव को, भूल सकल अपकार।।
पतितन के उद्धारक जग में, पापिन-तारनहार।
हीनन के दुःख हरत दयानिधि, दीनन के दातार।।
छिन-छिन ध्यान करत दासन को, सुनि-सुनि करूण पुकार।
रसिकन की रखवारी करते, प्रेमिन-पालनहार।।
राजा-प्रजा-बादशाह कोऊ, सकल भाँति हुशियार।
कौन चुका पावै या जग में, गुरुवर के उपकार।।
लोक और परलोक सुधारत, बिगरी देत सुधार।
'बिरजदास' सतगुरु चरनों पै, बार-बार बलिहार।।

जगत में परमाभिनन्दनीय श्रील गुरुदेव के समान उदार कौन हो सकता है? वे जीव के सम्पूर्ण अपराधों को भुलाकर उसे परम शांति प्रदान करते हैं। उसके त्रिताप दुःखों को हर लेते हैं। रसिक जनों के तो वे रक्षक हैं ही और प्रेमियों के पालनहार भी है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीसद् गुरुदेव के चरणकमलों पर मैं बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने लोक-परलोक दोनों को सुधार दिया है।"

पद (६५)

मैं तो निर्मल होता जाऊँ।
सतगुरु चरनन निकसी गंगा, निशदिन मल-मल-न्हाऊँ।।
मन कपरा मैं प्रेम को साबुन, आठों याम लगाऊँ।
सत्य-शिला पे देऊँ पछांटो, या विधि मैल छुड़ाऊँ।।
काम को काम तमाम कियो गुरु, क्रोध की कहा बताऊँ।
गिन-गिन दोष हरे मम उर के, बार-बार बलि जाऊँ।।
श्रीगुरु पद पंकज की आली, का मुख महिमा गाऊँ।
महत-पुरुष मोहे लाड़-लड़ावैं, फूला नाहिं समाऊँ।।
रे 'ब्रजदास' गुरु मेरे समरथ, कलि ते कहा डराऊँ।

मन-पावक अब भई हिमालय, शीतल होता जाऊँ।।

मैं तो अब निर्मल होता जाऊँगा। सद् गुरुदेव की चरण कृपा में दिवानिशि स्नान करूँगा। मन के वस्त्र को भगवद् प्रेम से शुद्ध करूँगा। श्रीगुरुदेव की महिमा कहने में मैं सर्वदा असमर्थ हूँ। ब्रजदासजी कहते हैं- "मेरे गुरुदेव अत्यन्त सामर्थ्यवान हैं, मैं कलियुग से क्यों डरूँ?"

पद (९६)

चल रे गुरु सरिता के तीर।
भरयो भयो है जा में निर्मल, हरि करूणा को नीर।।
उड़ि-उड़ि आवत मन हर्षावत, पुलकत जात शरीर।
सरस पुलिन पै लगी भई है, हंस जनन की भीर।।
अरस-परस से अति सुख उपजत, मन में आवत धीर।
जा में अवगाहन कीन्हें ते, मिटत त्रिविध की पीर।।
अमल-निमल जल कलकल करतो, ज्यों उज्ज्वल सो क्षीर।
गहरे पानी पैठ पाईयो, गहरो ज्ञान गँभीर।।
'बिरजदास' कछु और न दीखत, जित देखो तित नीर।
या सरिता को पाट बड़ो है, अन्त न आवत वीर।।

हे मन! तुम गुरुरूपी सरिता के तट पर चलो; जहाँ निर्मल करूणा का जल भरा हुआ है। इस करूणा जल स्पर्श से मन में सुख और द्रवितता उत्पन्न होती है। ब्रजदासजी कहते हैं- "यहाँ केवल गुरु-कृपा का नीर ही बह रहा है।"

पद (९७)

जग में गुरु गंगा की धारा।
सलिल सुकोमल जल अति पावन, पाप नसावन हारा।।
कल कल करत हरत कलिमल को, सब दुःख देत निवारा।
जो या धारा में डूबत है, सोई उतरत है पारा।।
तन-मन सब निर्मल हो जावै, सुख उपजै सो न्यारा।
मल-मल के अवगाहन करिये, अघ धुल जई है सारा।।

आँखिन की काई हट जई है, होवहिं धवल उजारा।
उज्ज्वल ही उज्ज्वल दीखैगा, चित् न रहैगा कारा।।
मत 'ब्रजदास' देखते रहियो, छूटे जात किनारा।
गुरु-करूणा जल बह्यो जात है, कूद परो रे प्यारा।।

जगत में गुरु ही गंगधारा के समान हैं। जो जन इस निर्मल धारा से सम्बन्ध योग कर लेते हैं। वे भवसागर से पार हो जाते हैं। सर्वत्र उज्ज्वलता ही उज्ज्वलता दिखाई देती है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु करूणा का जल प्रसाद किसी विरले प्रेमी को ही प्राप्त हो पाता है।"

पद (६८)

जिनके गुरु दाता गम्भीर।
तिनके कहा कमी या जग में, मिटि त्रिविध की पीर।।
जिनके हियै बसी गुरु-मूरति, कहा कहूँ मेरी बीर।
तिनके नैन सदा मदमाते, बहत नेह को नीर।।
जिनके मन सतगुरु सौं लागे, छांड़ि जगत की भीर।
तिनके आँगन नित होरी है, उड़त गुलाल अबीर।।
तजि पोखर जग के जा बैठे, गुरु-सरिता की तीर।
तिनके द्वार सदा ही बहती, शीतल-मन्द-समीर।।
को बिगार करै ते जन को, को पै लंघै लकीर।
जे जन ओढ़ लियो या जग में, गुरु किरपा को चीर।।
ऐक बार जे जन पै बरस्यो, गुरु-करूणा को नीर।
'बिरजदास' ते जन या जग में, कबहु न भये अधीर।।

जिनको गुरु निष्ठा है, उनको इस जगत में किसी बात का अभाव नहीं रह जाता है। उसके नेत्र से प्रेमाश्रु धारा बहती रहती है। वे लोग जगत तालाब को त्यागकर गुरु-सरिता के तट पर बैठ जाते हैं।

ब्रजदासजी कहते हैं- "वे लोग कभी-भी इस जगत में धैर्यहीन नहीं होते।"

पद (९९)

बदरिया गुरु करूणा की छाई।
झर-झर झरत नेह के झरना, सावन को झर लाई।।
उज्ज्वल भाव चमक रही चपला, सकल ठौर चमकाई।
उमड़-घुमड़ के गर्जन लागी, प्रेम-नीर भर लाई।।
अंग-अंग आनन्द भयो है, गात छुवत पुरवाई।
सिर न रुकै सतरंग चुनरिया, लहर-लहर लहराई।।
तरूण बादरी वेग दिखावत, कौन सहै तरुणाई।
करूण-घटा बरसी उर-आंगन, मन छाई सितलाई।।
जित देखूं तित परत फुहारैं, भर गये ताल-तलाई।
मन मयूर झट नाँचन लाग्यो, पावस की रितु आई।।
दादुर-मोर-पपीहा को स्वर, लागत अति सुखदाई।
'बिरजदास' गुरु कृपा अनोखी, प्राण रहे हरसाई।।

गुरु करूणा के मेघ छा गये हैं, झर-झर प्रेम का झरना बह रहा है, उज्ज्वल भाव की चपला बिजली चमक रही है, अंग-अंग आनन्दित हो गया है, मनरूपी मन नृत्य करने लगा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "गुरु-कृपा बड़ी ही विलक्षण है अब तो मेरे प्राण हर्षित हो रहे हैं।"

पद (१००)

आली मोरी आज ही आखातीज।
आज गुरु मेरे मन में बोयो, राम नाम को बीज।।
मैं हूँ राम को राम है मेरो, दोउन गये बंधीज।
जग कूँ मो सौं का लेनो है, रीझ भजूँ या खीझ।।
सतगुरु रंग ऐसो ही डारयो, मो मन गयो रंगीज।
राम-नाम रंग बरसन लाग्यो, रोम रोम गयो भीज।।
गुरु करूणा ते सकल सिद्धियाँ आन परी उर रीझ।
कल्पवृक्ष हू भयो कृपालू, कामधेनु गयी धीज।।
मणि-मुक्ताहल-हीरे-मोती, खान अनेक भरीज।

तीन लोक में कौऊ नहीं है, राम-नाम सी चीज।।
अब 'ब्रजदास' निशंक भयोरी, कर्म गये सब छीज।
सतगुरु शरण देखि के मोहे, काल लिये कर मींज।।

हे सखि! मेरी तो आज ही अक्षय तृतीया है। आज पूज्यपाद गुरुदेव ने हरिनाम का बीजारोपण कर दिया है। अब मैं हरि की हूँ और हरि मेरे हैं। जगत से तो अब कुछ लेना-देना नहीं रहा है। श्रीगुरुदेव ने ऐसा प्रेम रंग डाल दिया है कि मेरा तन-मन हर्षित हो गया है।

ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु-कृपा प्राप्त कर मै निशंक और निश्चिन्त हो गया हूँ।"

पद (१०१)

बरस रह्यो री रंग सतगुरुजी के द्वार।
उड़त गुलाल अबीर सखी री, रंग की परत फुहार।।
भाव को रंग, प्रेम-पिचकारी, लीन्ही है कर धार।
आज कोऊ ते मैं न डरूँगी, दऊँगी चरन पे डार।।
लोक लाज मोहे कछु न सुहावत, आज देहुँ रंग डार।
सतगुरु संग खेलूंगी होरी, कोऊ न बरजनहार।।
गुरु ही सखा गुरु मीत हमारे, गुरु ही सिरजनहार।
गुरु संग छांड़ि कौन संग खेलूं, फागुन के दिन चार।।
रोम-रोम मेरो भीग गयो री, नाम-रंग बलिहार।
अंग-संग मोरे सतगुरु हैं री, तन मन दऊँगी वार।।
को 'ब्रजदास' डरै अब यम सौं, दीन्हों काल निवार।
मोरे गुरु रंग ऐसो डारयो, कबहु न छूटन हार।।

श्रीगुरुदेव के द्वार पर रंग बरस रहा है और भाव का रंग, प्रेम की पिचकारी हाथ में ले ली है। आज मैं किसी से भी नहीं डरूँगी। श्रीगुरुदेव के श्रीचरणारविन्द पर प्रेम भाव का रंग अर्पित करूँगी। वे ही मेरे सच्चे हितैषी और पालनहार हैं। मैं अब उनके बिना किससे होली खेलूँ?

ब्रजदासजी कहते हैं- "अब मुझे कोई भय नहीं है। मेरे गुरुदेव ने तो ऐसा रंग डाल दिया है, जो जीवन पर्यन्त कभी नहीं छूटेगा।"

पद (१०२)

चतुरजन ऐहि विधि खेलत होरी।
सहज-सनेह को रंग बरसावत, करत न बाराजोरी।।
प्रेम को कुण्ड भरयो घट भीतर, पल-पल उलझ रह्यो री।
आतम आँगन कीच मच्यो है, नाम को रंग ढुर्‌यो री।।
शील संतोष-अबीर को बादर, चहुँ दिश आन अट्‌यो री।
ज्ञान-गुलाल उड़त मन-महलन, अति आनन्द हुयो री।।
ऐसो फाग जुगत सौं खेलत, जग जानत नहीं थोरी।
भीतर बहत पनारे रंग के, बाहर चादर कोरी।।
प्रेम को रंग पिया पर डारत, अद्‌भुत खेल जम्यो री।
सुरत-निरत दोऊ भई दिवानी, उर विच फागरच्योरी।।
नित 'ब्रजदास' बसन्त रहत है, नित ही फाग मच्यो री।
सत् गुरु रंग ऐसो ही डार्‌यो, नख-शिख प्रेम में बोरी।।

चतुर जन इसप्रकार से होली खेलते हैं- स्नेह का रंग, प्रेम का कुण्ड हृदय में भरा हुआ है। आत्मा के आँगन में नाम का रंग जा रहा है। शील संतोषरूपी अबीर को मेघ में उड़ा रहे हैं, ज्ञानरूपी गुलाल उड़कर मन को सौरभित कर रहा है। ब्रजदासजी कहते हैं- "नित्य ही बसंत है और नित्य ही फाग उत्सव है। श्रीगुरुदेव ने मुझे इस प्रेमरस में सराबोर कर दिया है।"

पद (१०३)

गुरुवर ऐसी मौज करी।
करि करूणा छिन माहिं पलट दी, दृष्टि भेद भरी।।
घट-बढ़ को कछु काम नहीं है, है सब भाँति खरी।
हृदय तराजू, बसत भाव की, पूरी तोल धरी।।

तन निरतै मन मगन भयो है, बतियाँ मोद भरी।
उर आनन्द उछाह हिया में, अँखियां नेह ढ़री।।
चहूँ ओर सीतलता छाई, लागी प्रेम झरी।
कोटि जनम को अघ वन जारयो, कर्मन काठ जरी।।
'बिरजदास' गुरुदेव कृपा ते, दीखे आज हरी।
श्रीगोविन्द द्वार पै ठाड़े, निरखूँ घरी-घरी।।

पूज्यपाद गुरुदेव ने ऐसा आनन्दित कर दिया है कि मेरी भेद दृष्टि को मिटा दिया है। हृदय में उत्साह और चारों ओर शीतलता छाई है। कोटि जन्मों से एकत्रित हुआ पाप-वन जल गया है। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरु-कृपा से आज श्रीहरि की मनमोहनी छवि दिखाई दे रही है।"

पद (१०४)

गुरुवर गह लीन्हों सब भाँती।
सकल विकार मिटाये उर के, प्रेम लता लहराती।।
पाथर हियो भयो अतिकोमल, अँखियां रस बरसाती।
निर्मल हो गयी मैली बुद्धि, शीतल हो गयी छाती।।
गुरु करूणा ते आनँद हो गये, बात कही नहीं जाती।
बिन बादर के बरखा बरसी, दीप जर्‌यो बिन बाती।।
त्यागि दिये सब रिश्ते-नाते, छाँड़ि दिये सब साथी।
अब तो वैष्णवजन ही हो गये, निज समाज निज जाती।।
कहा कहूँ कछु कह्‌यो न जावै, वाणी मुख नहीं आती।
'बिरजदास' जो गुरु नहीं कीन्हों, सो नर है कुलघाती।।

गुरुजी महाराज ने मुझे सभी भांति से पकड़ रखा है। सम्पूर्ण विकार हृदय से मिटाकर प्रेमलता को उत्पन्न कर दिया है। पाषाण जैसे हृदय को अत्यन्त कोमल बना दिया है। बुद्धि निर्मल और नेत्र प्रेमाश्रुयुक्त बना दिये हैं। अब तो बिना घृत के ही बाती जल रही है। ब्रजदासजी कहते हैं- "जिस मनुष्य ने गुरु करण नहीं किया है, वह कुलघाती है।"

पद (१०५)

गुरुवर एक तुम्हीं सौं आशा।
बहरूप्यो जग भ्रमित करत है, बहु विधि होत तमाशा।।
एक तुम्ही अवलम्ब गुरुवर, शरन राखिये दासा।
कुटिल जगत को कहा भरोसो, कहूँ तोला कहूँ माशा।।
छिन-छिन करत धरम की हानी, दै-दै के नित झाँसा।
पापीजन प्रेमिन के ऊपर, फैंक रहे हैं पाशा।।
साधकजन को, को रखवारो, जग में रहत उदासा।
देह परी भूमि कै ऊपर, सुरत चढ़ी आकाशा।।
का ते कहूँ कौन समझैगो, अन्तर की अभिलाषा।
'बिरजदास' कोऊ कैसे जानै, हीर प्रेमिन की भाषा।।

हे गुरुजी महाराज! हमें तो एकमात्र तुम्हीं से आशा है यह जगत तो बहुरूपिया है बहुत प्रकार से तमाशा करेगा। हमारे तो एकमात्र आप ही सहारे हैं। इस जगत का क्या विश्वास करें? ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीहरि प्रेमियों की भाषा कोई कैसे समझ सकता है।"

पद (१०६)

आशा पुरवौ सतगुरुनाथ।
सहस वदन की हरि-ग्रीवा में, माल धरूँ निज हाथ।।
भाव-पुष्प चुन-चुन के लाऊँ, दिन देखूँ न रात।
गद्गद् गिरा, नैन जल बरसै, पुलकै मेरो गात।।
नव-नव भाव उदय कर दीजौ, लीजौ अपने साथ।
मेरे उर आँगन में कीजौ, शब्दन की बरसात।।
ऐसी कृपा कीजियो मोपै, छन्द रचूँ दिन-रात।
युगल किशोर श्रवन कर लेवैं, मेरे मन की बात।।
भाव भरी छाती है मेरी, करूणा कही न जात।
'बिरजदास' के गहन हिया की, सुन लीजौ हे तात।।

हे गुरुजी महाराज आप हमारी आशाओं को पूर्ण कीजिये।

सहस्त्र तुलसी दल की मालाओं को श्रीहरि के कण्ठ में धारण कराऊँ, भाव पुष्प को चुन-चुनकर मेरी वाणी गद्‌गद् हो जाये, हृदय आँगन में शब्दों की बरसात हो। ब्रजदासजी कहते हैं- "मेरा हृदय भावपूर्ण हो जाये; इसी प्रार्थना को पूर्ण कीजिये।"

पद (१०७)

आरती गुरु-गोविन्द की करिये।
दर्शन रूपी सुखद मणिन सौं, नैनन झोली भरिये।।
नाम-पुष्प की माला गुँथि के, जा ग्रीवा पै धरिये।
अगर-कपूर-नेह को लाके, गेह सुगन्धित करिये।।
नैनन-झारी जल अति पावन, पलक-पलक में ढ़रिये।
हृदय-थाल पै प्रेम की बाती, विविध सजा के धरिये।।
कहा काम थकने को आली, नेह भरे पग धरिये।
भाव महल की ऊँची सीढ़िन, चढ़िये और उतरिये।।
'बिरजदास' यह सरस आरती, मन ही मन में करिये।
देह-भाव सौं ऊपर उठकर, भाव देहचित् धरिये।।

श्रीगुरु रूपी गोविन्द की आरती कीजिये। दर्शन रूपी सुखद मणि को झोली में भर लीजिये। हरिनाम पुष्प की माला ग्रीवा में धारण कीजिये। स्नेह का कर्पूर से गृह को सुगन्धित कीजिये। हृदय तल में प्रेम-बाती सजाइये। ब्रजदासजी कहते हैं- "देह भाव से उठकर रस भाव में विराजिये।"

पद (१०८)

श्रीमद् गुरु शोभित सब भाँती।
आरती वन्दन अर्चन पूजन, रस बरसत दिन राती।।
सुन्दर नैन कमल से लागत, बदन-छवि हर्षाती।
गुरु मूरत राजत मन्मथ सी, मधुर मधुर मुस्काती।।
तीरथ गन ठाड़े कर जोरे, नदियाँ चरन धुलाती।
निधियाँ सब सेवा में रहती, सिधियाँ चँवर ढुलाती।।
सकल देव बिन्ती रत रहते, महिमा कही न जाती।

शेष सहस मुख करत बड़ाई, शारद नित गुन गाती।।
'बिरजदास' निरखत छवि आली, सकल भाँति सुखपाती।
हरि गुरु दोनों लगत एक से, शीतल होवत छाती।।

श्रीगुरुदेव सब विधि परम श्रेष्ठ हैं। वे आरती, वन्दन, अर्चन, पूजन में लगे रहते हैं। वे हाथ जोड़कर प्रभु सेवा में निमग्न रहते हैं। सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धियाँ उनकी सेवा में रहती हैं। शेष, सारदा भी गुरु-तत्त्व का वर्णन करते रहते हैं। ब्रजदासजी कहते हैं- "श्रीगुरुदेव की छवि को निहारकर सर्व प्रकार से सुख होता है। श्रीहरि श्रीगुरु जिनको दोनों एक ही तत्त्व लगते हैं, उनके दर्शन कर हृदय शीतल हो जाता है।"